पुनर्जन्म
हृदय

स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी महाराज

हमारे प्रकाशन

यथार्थ गीता -
'यथार्थ गीता' में श्रीकृष्ण की वाणी के आशय को भली प्रकार यथावत् समझाया है। यह एक कालजयी कृति है।
२८ भाषाओं में

अंग क्यों फड़कते हैं और क्या कहते हैं? -
मानव शरीर के विभिन्न हिस्सों में होने वाले स्पन्दनों का कारण और उसके संकेतों का विश्लेषण किया गया है जो कि साधना में काफी सहायक है।
४ भाषाओं में

जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति -
पूज्य गुरु परमहंस स्वामी श्रीपरमानन्दजी महाराज के जीवन के वृत्तान्त, उनकी अनुभूतियों एवं उपदेशों को संकलित किया है। साधकों के लिए यह बहुत उपयोगी ग्रन्थ है।
४ भाषाओं में
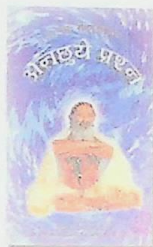
अनछुए प्रश्न -
वर्ण, मूर्तिपूजा, ध्यान, हठ, चक्र-भेदन और योग जैसे विषयों को स्पष्ट कर भ्रमित समाज का मार्गदर्शन किया गया है।
३ भाषाओं में
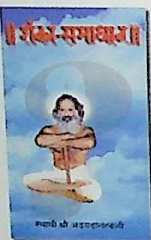
शंका समाधान -
समाज में प्रचलित सभी कुरीति, रुढ़ि, आडम्बर और अन्धविश्वासों का शमन एवं समाधान किया है।
५ भाषाओं में

एकलव्य का अंगूठा -
शिक्षा-गुरु और सद्गुरु में अन्तर बतलाया गया है। शिक्षक, लोकजीवन की कला सिखाते हैं जबकि सद्गुरु जीवन में समृद्धि के साथ परमश्रेय की जागृति और उस परमपद की प्राप्ति कराते हैं जिससे पुरुष आवागमन से मुक्त हो जाता है।
३ भाषाओं में

भजन किसका करें?-
लोग गाय, पीपल, देवी-देवताओं, भूत-भवानी की पूजा, धर्म के नाम पर कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इन सभी भ्रान्तियों का निवारण करते हुए स्पष्ट किया गया है कि सनातन धर्म क्या है? इष्ट कौन है? भजन किसका करें व कैसे करें?
६ भाषाओं में

षोडशोपचार पूजन पद्धति -
इस पुस्तम में यह बताया गया है कि एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर कराकर, उस एक परमात्मा का चिन्तन सिखाना ही कर्मकाण्ड है।
३ भाषाओं में
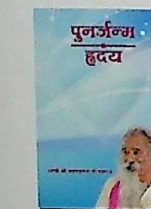
पुनर्जन्म
बौद्धिक स्तर पर यह एक उलझा हुआ प्रश्न है। मनुष्य जन्मा, जीवन-यापन किया; शरीर छूटा, चला भी गया; कुछ समझ ही नहीं पाया कि पुनर्जन्म है या नहीं। किन्तु योगाभ्यास की एक निश्चित ऊँचाई से मनुष्य जब गुजरता है तो उसे स्पष्ट दिखाई देता है कि पुनर्जन्म है? मैं क्या था? आगे कहाँ जाना है?

हृदय
शरीर में हृदय कहाँ है जिसमें परमात्मा का निवास है? हृदय का परिचय तथा परमात्मा को जानने की सम्पूर्ण विधि पर प्रकाश डाला गया है। क्रमोन्नत तीन शरीर हैं- स्थूल, सूक्ष्म और कारण। क्रमशः कारण शरीर के अन्तिम स्तर पर साधन पहुँचता है, तहाँ ईश्वर का निवास है। यह पुस्तिका इन्हीं प्रश्नों का पूर्ण परिचय देती है।

हिन्दी भाषा में
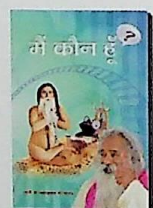
मैं कौन हूँ?
जन्म से ही नाना प्रकार के सम्बन्धों में भ्रम हो जाता है कि मैं कौन हूँ? यह जिज्ञासा यौगिक है। 'वासांसि जीर्णानि......'- शरीर एक वस्त्र है। यह शरीर छूटा, दूसरा मिला। तामस गुण के कार्यकाल में मृत्यु को प्राप्त हुआ पुरुष पशु, कीट-पतंग इत्यादि अधम योनि प्राप्त करता है। राजसी गुण के कार्यकाल में वह मनुष्य तन पाता है। सात्विक गुण के कार्यकाल में देव इत्यादि उन्नत योनि पाता है- हर हालत में योनि पाता है। अतः यह प्रश्न ज्यों-का-त्यों है कि मैं कौन हूँ? वास्तव में जब द्रष्टा यह आत्मा अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है तो वही आपका वास्तविक स्वरूप है।

हिन्दी भाषा में

।। ॐ श्री सद्गुरुदेवाय नमः।।

लेखक :

परमपूज्य श्री परमहंस महाराज के कृपा-प्रसाद

स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी

श्री परमहंस आश्रम

ग्राम व पोस्ट- शक्तेषगढ़, चुनार-मिर्जापुर (उ0प्र0), भारत

फोन : (05443) 238040

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं.. ५, मोगरा लेन (रेल्वे सब-वे के पास),

अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०००६९, भारत

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं. ५,
मोगरा लेन (रेल्वे सब-वे के पास),
अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०००६९, भारत
दुरध्वनी - ०२२-२८२५५३००
ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com
वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com

संस्करण - प्रथम, महाशिवरात्रि, सन् २०१०
से नवंबर, सन् २०१६ - ३५,००० प्रतियाँ
जुलाई, सन् २०१९ - ५,००० प्रतियाँ

मूल्य : रु. ८०/-

मुद्रक :
जॅक प्रिण्टर्स प्रा.लि.
जॅक कंपाऊंड,
दादोजी कोंडदेव क्रॉस लेन,
भायखळा (पूर्व)
मुम्बई - ४०० ०२७, भारत
फोन : (०९१-२२) २३७७ २२२२
ई-मेल : mail@jakprinters.com

ISBN : 81-89308-65-3

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया-चित्रकूट

के परम पावन चरणों में

सादर समर्पित

अन्तःप्रेरणा
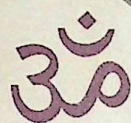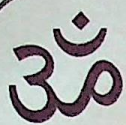
गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।।
योगी अद्वैष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।।
जय सद्गुरु.........भारी।।

।। ॐ ।।

"आत्मने मोक्षार्थं जगत् हिताय च"
श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)
जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम १९६८ (सन् १९११ ई०)
महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल ७, वि०सं० २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई०
परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट
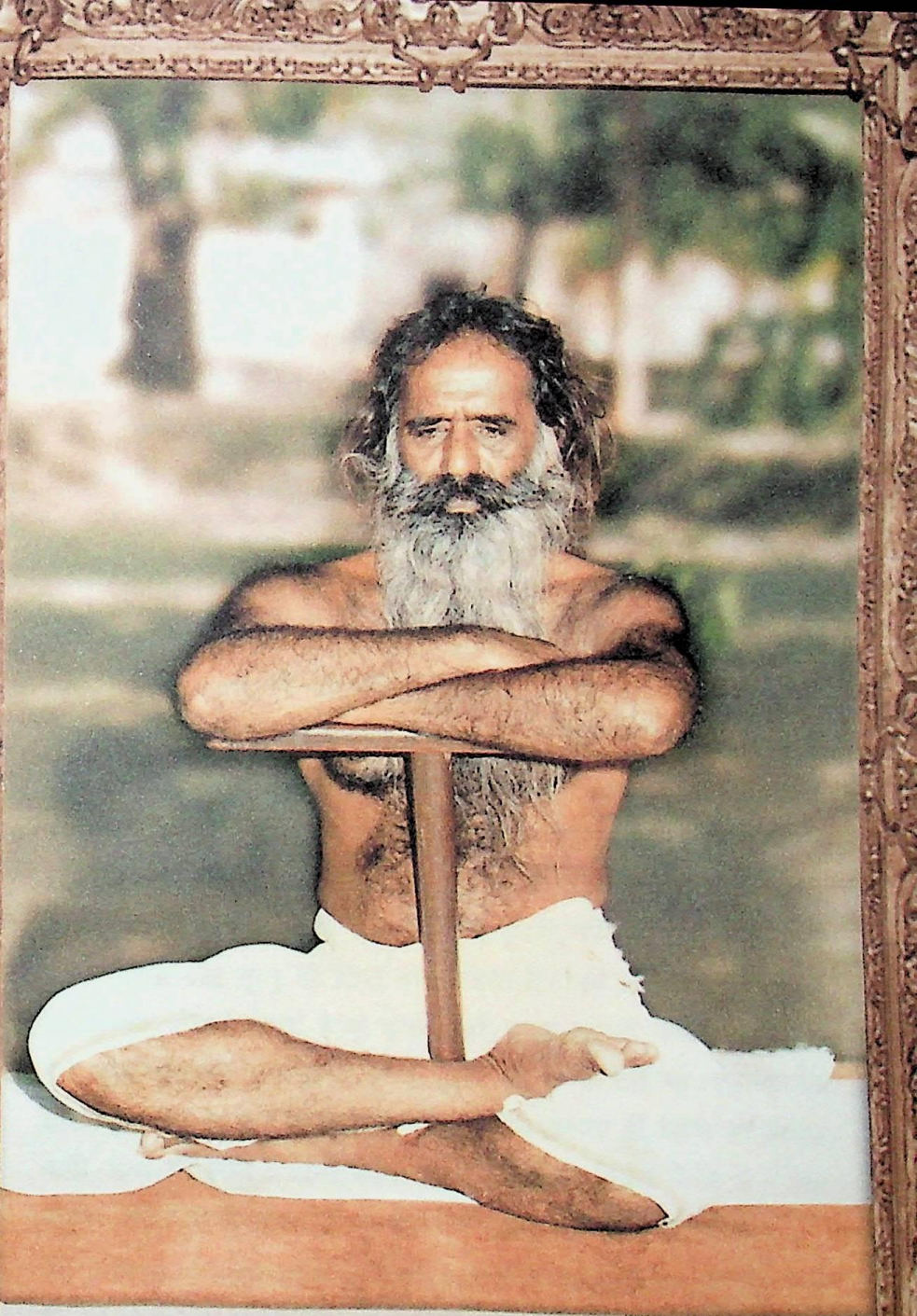
श्री स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

(परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद)

पुनर्जन्म

दीपावली, दिनांक 17 अक्टूबर सन् 2009 को श्री परमहंस आश्रम शक्तेषगढ़ की सायंकालीन सभा में भक्तों की जिज्ञासा पर कि ''मृत्यु के पश्चात् क्या जीवात्मा का पुनर्जन्म होता है?'' पूज्य महाराजश्री का प्रवचन।

जन्म और मृत्यु से जुड़ी मानव की यह जिज्ञासा स्वाभाविक ही है। लोग जानना चाहते हैं कि मृत्यु के उपरान्त पंचभौतिक स्थूल शरीर के साथ क्या जीवनभर क्रियाशील चेतन जीवात्मा का भी अन्त हो जाता है? यदि मृत्यु के पश्चात् भी जीवात्मा का अस्तित्व है, तो क्या जीवन में उसके द्वारा किये गये कार्यों की समीक्षा होती है? यह समीक्षा तत्काल होती है अथवा मृत्यु के उपरान्त कतिपय दिनों-वर्षों-युगों पश्चात् किसी नियत तिथि को होती है? कर्मों का प्रतिफल अनन्तकाल तक सुखमय या दुःखमय जीवन के रूप में मिलता है अथवा कर्मानुसार मानव पशु-पक्षी, कीट-पतंग, जंगम-स्थावर इत्यादि किसी एक योनि से दूसरी योनि में बार-बार जन्म ग्रहण करता और मृत्यु को प्राप्त होता रहता है? यह प्रतिफल इसी पृथ्वी पर आकर भोगना पड़ता है या दूसरे ग्रहों, दृश्य-अदृश्य लोकों में मिलता है? क्या जीवात्मा कर्मानुसार कभी पुरुष तो कभी स्त्री या नपुंसक देह धारण कर सकता है? जन्म-मृत्यु का यह क्रम चलता ही रहेगा या इसका कभी अन्त भी होगा? अन्त स्वतः होगा या किसी नियत विधि से? क्या मनुष्य अपने भावी पुनर्जन्म को नियन्त्रित कर सकता है? इत्यादि।

विश्व के दर्शनशास्त्रियों ने इस सन्दर्भ में तीन संभावनायें व्यक्त की हैं। देह से पृथक् आत्मा की अमरता और कर्मवाद में आस्था न रखनेवाले मानते हैं कि देह के साथ ही सबकुछ नष्ट हो जाता है- **'भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः?'** भस्म हुए शरीर का पुनरागमन कहाँ होता

है ? किन्तु जिन लोगों ने जीवनपर्यन्त सदाचार का पालन किया, वह बिना परिणाम के सर्वथा लुप्त हो जायेगा ? अतः बहुत कम लोग सम्पूर्ण नाश की बात करते हैं।

अनन्तकाल तक सुख-दुःख भोगने का विचार भी संगत नहीं है क्योंकि जीवन तो सीमित है और उतनी ही अवधि में किये गये सत्कर्मों या दुष्कर्मों के लिये स्वर्ग या नरक में असीमित अनन्तकाल तक निवास न्यायसंगत नहीं लगता। जो जीव गर्भ में अथवा शैशवावस्था में ही मर जाते हैं उन्हें किन कर्मों के आधार पर स्वर्ग या नरक दिया जायेगा ? जन्म से ही कोई विकलांग, मन्दबुद्धि, धनी-निर्धन, सदाचारी-दुराचारी कुल में क्यों आता है ? ईश्वर पक्षपात तो करता नहीं! कुछेक कहते हैं कि वह परीक्षा लेने के लिये किसी को उक्त विषम परिस्थितियों से गुजार कर देखता है कि ईश्वर के प्रति वे कितने निष्ठावान् हैं; किन्तु परीक्षा, पाठ्यक्रम निर्धारित करने के उपरान्त सार्वभौम नियमों के अन्तर्गत ली जाती है। अभ्यास का अवसर ही नहीं मिला तो परीक्षा कैसी ? अभी वह होश में ही नहीं आया तो परीक्षा कैसी ?

अधिकांश भारतीय दर्शन सांख्ययोग, न्याय, वैशेषिक मीमांसा, वेदान्त, जैन और बौद्ध आदि कर्म एवं कर्मानुसार पुनर्जन्म के रूप में तीसरे विकल्प को स्वीकार करते हैं, जिसके अनुसार इस जीवन में किये गये कर्म एवं आचरण मनुष्य के भावी जीवन का निर्माण करते हैं और वर्तमान जीवन मनुष्य द्वारा अतीत जीवन या जीवनों में किये गये आचरण का प्रतिफल है।

पुनर्जन्म तथा पूर्वजन्म के सम्बन्ध में पूज्य गुरुदेव अपनी जन्मभूमि रामकोला (वर्तमान जनपद पडरौना, उत्तर प्रदेश) की एक घटना सुनाते थे। उक्त ग्राम में नत्थू खाँ नामक एक कसाई था, बकरों को काटकर उनका मांस बेचता था। एक दिन उसकी मृत्यु हो गयी। सगे-सम्बन्धियों को एकत्र होने में कुछ समय व्यतीत हुआ। उसके हाथ की एक उँगली में

रह-रहकर कम्पन हो जाता था। लोग संशय में थे कि इसकी मृत्यु हो गयी अथवा नहीं ? एक घण्टे पश्चात् वह उठ बैठा। उठते ही उसने कहा- पता करो कि हमारे गाँव के नत्थू हरिजन की मौत हुई या नहीं ? तब तक उस ओर से आ रहे किसी ने बताया- अभी-अभी नत्थू चमार मर गया। घर की औरतें विलाप कर रही थीं।

लोगों ने पूछा- नत्थू चमार के बारे में आपने क्यों पूछा ? उसने बताया कि उसके चारों ओर अँधेरा होने लगा। कुछ क्रूर आकृतियाँ उसे कहीं ले जाने लगीं। मार्ग में वे बकरे-बकरियाँ जिन्हें उसने काटा था, उसे खाने के लिये जीभ लपलपाती हुई दौड़ीं। ले जा रहे लोगों ने कहा- तुम सबको मौका दिया जायेगा। पहले इसकी पेशी हो जाने दो। वे उसे एक भीमकाय व्यक्ति के दरबार में ले गये। उसने देखते ही कहा, ''इसे क्यों ले आये ? बही देखो, अभी इसकी आयु शेष है।'' बही देखी गयी। जिसे ले आना था वह नत्थू खाँ नहीं, नत्थू चमार था।

इसी बीच बही में उसने पढ़ लिया कि उसके सम्मानित जमींदार साहब गाँव के ही पीर साहब के यहाँ 22 वर्षों से घोड़े की साईसी कर रहे हैं। उन्होंने पीर साहब से सत्तर रुपया लिया था। लेने-देने वाले दोनों ही इसे भूल चुके थे; किन्तु उसी ऋण के बदले प्रतिष्ठित जमींदार साईस बने बदला चुका रहे थे। नत्थू खाँ ने जमींदार के लड़के से बही देखने को कहा, ऋण वापस कराया। दो-तीन दिन पश्चात् घोड़ों की सेवा करनेवाले साईस की मृत्यु हो गयी। यह मरणान्तक बेहोशी में आया एक दृश्य है। सृष्टि के समस्त जीवों का लेखा-जोखा परमात्मा के पास है। युगों पश्चात् भी वह उसे ज्यों का त्यों प्रसारित करता है। यह जीव जिस तरह समझ सकता है, भगवान् उसे उसी भाषा, उसी सम्बोधन और उसी वातावरण के विवरण देकर विधिवत् समझाते हैं। इस घटना के पश्चात् वर्षों तक नत्थू खाँ ने मांस नहीं खाया। यदा-कदा वह कभी-कभी खा लेता था; किन्तु कसाई का व्यवसाय उसने आजीवन नहीं किया।

गुरुदेव (पूज्य परमानन्द जी महाराज) कहा करते थे कि यदि वे शिष्य बनाते तो सहस्रों विरक्त शिष्य हो जाते। घर में खन-खट हुई, कोई विद्यार्थी परीक्षा में अनुत्तीर्ण होता या पारिवारिक ग्लानिवश कोई अनुसुइया के शान्त एकान्त नैसर्गिक सुषमा से अभिभूत होता, तपोधन महाराजश्री का दर्शन करता, उनकी मधुर वाणी श्रवण करता तो वह निवेदन करता कि भगवन्! अब घर जाने को मन नहीं करता, आप शिष्य बना लें। आप उन्हें समझाते थे कि घर-परिवार, समाज में तो ऐसा होता ही रहता है, परिस्थितियाँ बदलती ही रहती हैं। समझा-बुझाकर उसे घर वापस भेज देते थे। फिर भी कोई नहीं जाता तो डाँट-फटकार कर भगा देते; क्योंकि ज्योंही कोई महाराज के पास आता, उसका भूत, वर्तमान और भविष्य उन्हें ज्ञात हो जाता था। उन्हें विदित हो जाता था कि इसमें साधुता के लक्षण हैं भी या नहीं। जिनके लिये भगवान् से निर्देश मिला कि यह पुण्यात्मा है, पिछले कई जन्मों का पथिक है, इसका मार्गदर्शन करो- केवल उन्हीं को शिष्यरूप में स्वीकार किया। हमारे अग्रज अन्तेवासी स्वामी सच्चिदानन्द जी (धारकुण्डी महाराज) के सम्बन्ध में महाराज जी को अन्तर्जगत् से प्रेरणा हुई- कोई भ्रष्ट योगी आ रहा है। उसका मार्गदर्शन करो। हमारे बारे में महाराज जी को अनुभव में आया, उन्हें मेरा चेहरा दिखायी पड़ा- एक साँवला-सा लड़का भयंकर वेगवाली नदी के किनारे बैठा जोरों से रो रहा है। वह पार जाना चाहता है लेकिन तैरना-वैरना कुछ जानता नहीं। महाराज जी उसे धैर्य बँधाते कहते हैं- रो क्यों रहे हो? पार जाना है? तू इस प्रकार तैर! मैं खड़ा होकर तुझे देख रहा हूँ। वह दो-चार बार उल्टे-सीधे हाथ-पाँव मारकर तैर चला तो महाराज जी ने प्रोत्साहित करते हुए कहा- हाँ! इसी प्रकार तैरते चलो। घबड़ाना नहीं, मैं देख रहा हूँ। पार हो जाओगे। इस प्रकार पूर्वजन्मों के अर्जित संस्कारों के आधार पर ही पूज्य गुरुदेव किसी साधक को आश्रमीय प्रवेश देते थे। 'जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति' नामक पुस्तक में पूज्यश्री के जीवन से सम्बन्धित इस तरह की अनेक घटनायें विस्तार से उल्लिखित हैं। महापुरुषों की दृष्टि में

पुनर्जन्म बौद्धिक विषय नहीं है। उनके लिये यह अनुभव में प्रत्यक्ष दर्शन है। साधारण लोग तो मोहनिशा में अचेत हैं। उनके लिये न जन्म है और न पुनर्जन्म, कुछ है ही नहीं। वे अपनी बुद्धि के अनुसार उल्टा-सीधा कुछ-न-कुछ कहते ही रहते हैं।

भारतीय आध्यात्मिक ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि सृष्टि की प्रक्रिया जन्म-जन्मान्तरवाद से ही संचालित है। रावण मूलतः असुर नहीं था। पूर्वजन्म में वह हिरण्यकश्यप और उसके भी पूर्वजन्म में वह भगवान विष्णु का द्वारपाल था। मुनियों से उलझा तो शाप पा गया, असुर हो गया। 'अ' अर्थात् नहीं, 'सुर' अर्थात् देव- इस प्रकार असुर वह है जिसमें परमदेव परमात्मा का देवत्व अर्जित न होता हो, जो प्रकृति के अजस्त्र अंधकार की ओर गतिशील है। दैव और आसुर वृत्तियाँ हैं जिनका उल्लेख आदिशास्त्र श्रीमद्भगवद्गीता में भली प्रकार है। (अध्याय 16 द्रष्टव्य है।)

महर्षि पतंजलि के अनुसार योग-साधना की उत्कृष्ट अवस्था में- **'संस्कार साक्षात्करणात् पूर्वजाति ज्ञानम्।'** साधना की पराकाष्ठा में संस्कारों का साक्षात् होते ही पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है।

भगवान् बुद्ध दो सौ जन्मों से ईश्वर-दर्शन की कामना लेकर सत्कर्म में लगे हुए थे। किसी जन्म में उन्हें हाथी का शरीर मिला। तब भी उन्हें ज्ञान था। काशी का एक पण्डित जंगल में भटक गया। हाथी ने देखा, उसके पास आया। पहले तो पण्डित ने भागना चाहा, किन्तु उसे प्रतीत हुआ कि हाथी बड़ी सौम्य दृष्टि से देख रहा है, सिर हिलाकर बुला रहा है, बैठकर अपने ऊपर बैठने का संकेत कर रहा है। वह हाथी पर चढ़ गया। हाथी ने उसे काशी के किनारे छोड़ दिया।

अन्तिम जन्म में महाराजा शुद्धोदन के पुत्र के रूप में वे पैदा हुए। ज्योतिषियों ने कहा, ''यह बालक चक्रवर्ती सम्राट अथवा अत्यन्त महिमामण्डित महापुरुष होगा। संसार को एक धर्म का संदेश देगा, भ्रान्तियों का निवारण

करेगा।'' शुद्धोदन ने प्रयास किया कि वह चक्रवर्ती सम्राट बने, गृह-त्याग कर साधु न बनने पाये। वह इतना सतर्क थे कि अवसाद, वैराग्य को उत्प्रेरित करनेवाला कोई दृश्य कुमार के समक्ष आने न पाये। उसे ऐसे गुरुकुल में शिक्षा दिलायी जिसकी वाटिका में पतझड़ न हो। सूखे वृक्ष या झड़ती हुई पत्तियों को देखकर उसे वैराग्य न हो जाय। संत-महात्माओं से वह मिलने न पाये। भिन्न-भिन्न ऋतुओं के अनुकूल आवास, युवक-युवती, दास-दासियों, नृत्य-संगीत, मनोरंजन के मध्य पालन-पोषण चलता रहा। उस युग की अपूर्व सौन्दर्यसम्पन्न राजकुमारी यशोधरा से युवराज सिद्धार्थ का विवाह हुआ, जिससे पुत्ररत्न राहुल का जन्म हुआ। महाराज शुद्धोदन ने भोग-विलास की व्यवस्थाओं में सिद्धार्थ को उलझाने का हर संभव प्रयास किया; किन्तु सिद्धार्थ बुद्ध हो गये। संस्कारों का उदय होते ही कुछ दृश्य सामने आये; जीवन की नश्वरता का सत्य उद्‌घाटित हो गया। सुख-सुविधा, समस्त वैभवों का एक झटके में परित्याग कर वह साधन-पथ पर अग्रसर हो गये।

युवराज को महलों में कब तक बन्द रखते ? अन्ततः उन्हें राजगद्‌दी भी तो सँभालना था। जनता भी युवराज के दर्शनों को बेचैन थी। रथ पर बैठकर युवराज नगर-भ्रमण के लिये निकले। राजा ने निर्देश दे रखा था कि मार्ग में कोई वयोवृद्ध, रोगी अथवा किसी की शवयात्रा न आने पाये। लोग साफ-सुथरे वस्त्रों में हों, प्रसन्नता की मुद्रा में हों। कोई उदास न दिखायी पड़े। अचानक मिरगी का एक रोगी नाले में गिरकर ऐंठता ही जा रहा था, विवश था बेचारा! सिद्धार्थ रथ से कूद पड़े, उसके पास गये, लोगों से पूछा- इसे क्या हो गया ? यह नाक क्यों रगड़ रहा है ? इसे गन्दी नाली का ज्ञान क्यों नहीं है ? लोगों ने बताया- यह रोग से पीड़ित है। युवराज ने विचार किया- सुन्दर शरीर के पीछे इतना घातक रोग ? क्या इससे बचने का कोई उपाय नहीं है ? वह महल की ओर लौट पड़े। सवारी आगे नहीं गयी।

सात दिन पश्चात् पुनः राजकुमार की सवारी निकली। एक अत्यन्त वयोवृद्ध व्यक्ति ने बच्चों से पूछा- बाहर हमें वाद्य धुन सुनायी पड़ रही है। आजकल शादी-विवाह का मुहूर्त भी नहीं है, बाजे क्यों बज रहे हैं? बच्चों ने बताया- युवराज की सवारी निकली है। बूढ़ा बहुत खुश हुआ, उठकर चलने लगा। एक बच्चे ने मना किया- दादाजी! आप वहाँ नहीं जा सकते। ऐसा राजा का आदेश है। वह वृद्ध महाशय बिगड़ पड़े- तुमलोगों को तो अभी बहुत जीना है, युवराज को कभी भी देख लोगे। हमारी आयु बहुत कम रह गयी है, मैं कब देखूँगा? हमारे युवराज! और हम ही न देखें! राजा ने ऐसा आदेश कैसे दे दिया? दादाजी युवराज के सामने पहुँच गये। उनकी गर्दन हिल रही थी, हाथ काँप रहे थे। युवराज रथ से कूद पड़े। वृद्ध व्यक्ति के समीप आ गये। उन्होंने पूछा- ''आप सिर क्यों हिला रहे हैं?'' उस व्यक्ति ने कहा- ''मैं वृद्ध जो हो गया हूँ।'' युवराज ने पूछा- ''यह वृद्ध क्या होता है? क्या मैं भी वृद्ध हो जाऊँगा?''

अतिवृद्ध उस व्यक्ति ने कहा- ''युवराज! जो जन्म लेता है वह वृद्ध होता है और उसकी मृत्यु भी होती है। लेकिन आप क्यों चिन्तित हो रहे हैं? आप तो अभी बहुत वर्षों तक युवा रहेंगे।'' युवराज का समाधान नहीं हुआ। खिन्न हो गये कि शरीर की ऐसी अपरिहार्य अवस्था! व्यक्ति इतना विवश कि अपना सिर और हाथ भी सीधा नहीं रख सकता! इतनी असहाय अवस्था! रथ लौट पड़ा।

तीसरी बार जब उनकी सवारी निकली, मार्ग में उनकी दृष्टि एक शवयात्रा पर पड़ी। उन्होंने पूछा- लोग क्या ले जा रहे हैं? मंत्रियों ने कहा- यह है संसार! यहाँ कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। युवराज मचलकर बोले- मैं इसे देखना चाहता हूँ। लाश दिखायी गयी तो युवराज चौंक पड़े- यह तो तीस-पैंतीस वर्ष का एक व्यक्ति सोया हुआ है। यह आँखें क्यों नहीं खोलता? स्वाँस क्यों नहीं लेता? इसका शरीर ठण्डा क्यों है? लोगों ने बताया- यह मर गया, अब इसे जला दिया जायेगा। युवराज वहीं से लौट

पड़े। विचार करने लगे कि जन्म-मृत्यु, जरा और व्याधि! संसार दुःखमय है। क्या इन दुःखों से पार पाने का, इनसे बचने का भी कोई उपाय है? उस उपाय की शोध के लिये सिद्धार्थ ने अर्द्धरात्रि को महलों का परित्याग कर दिया। साधनाकाल में चालीस उपवास तक किया। अन्तकाल में कैवल्य-ज्ञान, आवागमन से मुक्ति, दर्शन के साथ मिलनेवाली अनुभूति- सबकुछ प्राप्त कर गौतम बुद्ध के स्वरूप में प्रतिष्ठित हुए। उनका यह अन्तिम प्राप्तिवाला जन्म था। पिता महाराज से लाखों अवरोधों के होते हुए भी समय आने पर वह सन्त हो गये।

इसीलिये गीता कहती है-

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्। (गीता, 6/45)

अर्जुन! शिथिल प्रयत्नवाला साधक भी कुछेक जन्मों के अन्तराल से वहीं पहुँच जाता है जिसका नाम परमगति है, परमधाम है। अर्जुन! इस पथ में आरम्भ का, बीज का नाश नहीं है।

ऐसा ही उल्लेख भगवान् महावीर का है। चौबीस जन्म पूर्व से साधना उनके हृदय में जागृत थी। उस जन्म में वह एक लकड़हारा थे। वह जंगल में घूम रहे थे। सहसा उन्हें एक सन्त दिखायी पड़े। संत पर दृष्टि पड़ी। वह टकटकी लगाकर उन सन्त को देखते ही रह गये। गरीब आदमी! हिम्मत ही नहीं हुई कि जाकर बातें करे। सन्तदर्शन के इस पुण्य से अगले जन्म में दो सन्तों को भोजन कराया। तीसरे जन्म में उन्होंने सत्संग सुना, परिव्राजक हो गये, विरक्त संन्यासी हुए, कहीं भूल हुई तो नरक भी जाना पड़ा। पुनः उनका जन्म हुआ। साधना जहाँ से छूटी थी, पुनः वहीं से आगे बढ़ी। एक जन्म में वह शेर हुए, एक जन्म में राजा भी हुए। अन्तिम जन्म में वह तीर्थंकर हुए। तीर्थ का आशय है- भवसिन्धु से तारनेवाला। तीर्थंकर वह है जो स्वयं तो पार है ही, दूसरों को भी पार करने की क्षमतावाला है। तीर्थंकर अर्द्ध-मागधी भाषा का शब्द है जिसका समकक्ष शब्द है सत्गुरु, योगेश्वर, आप्तकाम या शिवस्वरूप में स्थित महापुरुष, तत्त्वदर्शी।

चौबीसवें जन्म में उन्हें कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया। यह सब पुनर्जन्म की शृंखला है। यदि ऐसा नहीं है तो भाग्य क्या है? आप तकदीर, मुकद्दर, लिलाट इत्यादि का नाम ही क्यों लेते हैं?

पूज्य गुरुदेव भगवान् का जन्म एक सामान्य परिवार में हुआ था। लोकमान्यता है कि शास्त्रों के अध्ययन के बिना कल्याण नहीं होता; किन्तु महाराज जी के जीवन में इसका अवसर ही नहीं आया। बचपन में उन्होंने विद्यालय जाना आरम्भ ही किया था कि एक घटना घटित हो गयी। बाल स्वभाववश वह इधर-उधर घूम रहे थे, गुरुजी ने एक छड़ी लगा दी। बालक मचलकर रोने लगा। माँ ने कहा- भाड़ में जाय ऐसी शिक्षा! आज से मेरा बेटा स्कूल नहीं जायेगा। इस प्रकार शिक्षा का पाठ जीवन से उठ गया।

क्षेत्रीय वातावरण में उन दिनों दण्ड-बैठक, कसरत और मल्लविद्या कुश्ती का प्रचलन था। महाराज जी के ग्राम रामकोला में उन दिनों बारह विख्यात अखाड़े थे। महाराज भी ख्यातिलब्ध पहलवान हो गये। वे बताया करते थे- हो, घर बहुत प्यारा लगता था। खाने-पीने का सुख था। पाँच किलो दूध, मनचाहा घी, बादाम-पिश्ता नियमित प्रतिदिन मिल जाता था। शौक था तो व्यायाम और कुश्ती! आयु का अट्ठाइसवाँ वर्ष लग गया किन्तु कुश्ती में कभी हारे ही नहीं। इच्छा थी तो इतनी कि भारत के सर्वोपरि पहलवान गामा से हाथ मिलाकर देखना कि उसमें और मुझमें कितना अन्तर है?

उन दिनों का संस्मरण सुनाते हुए पूज्य महाराज जी कहते थे- हो, घर छोड़ने का रंचमात्र भी मन नहीं था। गृहस्थी प्यारी लगती थी। मन में कभी संकल्प तक नहीं उठा कि साधु होंगे। सहसा तीन बार आकाशवाणी हुई। पहली बार सुनायी पड़ा कि इन महात्मा को भोजन कराओ। दूसरा अवसर तब आया जब एक महिला के संदेश पर उससे मिलने जा रहे थे। रास्ते में विचार आया कि कहीं पाप करने तो नहीं जा रहा हूँ। बड़ी जोर से आकाशवाणी हुई- घोर पाप करने जा रहे हो! नरक में जाओगे! लौट

पड़े। खण्डहर हो चले गाँव के मन्दिर के समीप से गुजरने लगे। आकाशवाणी हुई- इसमें तुम्हारे गुरु महाराज हैं! मन्दिर में गये। अँधेरे में कोई दिखायी नहीं पड़ा। बाहर आ गये। झुंझलाहट हुई, मस्तिष्क में कौन जोर से बोलता है, कौन धीमे स्वर में ? क्यों आवाज आयी कि इसमें गुरु महाराज हैं ? इसमें तो कोई नहीं है! तभी मन्दिर से खाँसने की आवाज आयी। पुनः जाकर देखा, एक संत बैठे हुए थे। उन्हें सादर प्रणाम किया। प्रकाश की व्यवस्था की। तीन दिन तीन रात सेवा में लगे ही रह गये। साधना की विधि समझा और भजन में लग गये।

छः दिन पश्चात् ग्रामवासियों को पता चला कि वह झाड़ी में बैठे भजन कर रहे हैं। चार महीने में ही भजन जागृत हो गया। इष्टदेव रथी हो गये। भगवान् स्वयं उन्हें हृदय-देश से निर्देश देते हुए उठाने-बैठाने, चलाने और भजन पढ़ाने लगे। गृहनिष्क्रमण और स्वरूप में स्थिति के बीच उन्हें केवल आठ वर्ष लगे; किन्तु इन आठ वर्षों में अधिकांश समय दिगम्बर अवस्था में, सुरत सदैव इष्ट में लगी हुई, शारीरिक सुख-दुःख का भान नहीं, किसी से कुछ मतलब नहीं! दो उपवास, चार उपवास, छः उपवास आये दिन की घटना थी। चौदह-चौदह उपवास तक हुए।

गुरु महाराज शरीर-निर्वाह के लिये भिक्षा नहीं माँगते थे। उनकी मान्यता थी कि उन्हें भगवान् ने साधु बनाया है, वह तो ऐसा होना भी नहीं चाहते थे। जब उन्होंने बनाया है तो वही प्रबन्ध भी करेंगे। महाराज चिन्ता क्यों करें ? और प्रबन्ध हो भी जाया करता था। एक-दो दिन व्यतीत हो जाते थे; किन्तु तीसरे से चौथे दिन तक किसी-न-किसी के मन में भगवान् ही प्रेरणा कर व्यवस्था कर देते थे। किसी को आकाशवाणी होती कि इन सन्त की सेवा करो, किसी को स्वप्न दिखायी पड़ता था। कभी कोई श्रद्धालु सहज ही मिल जाते थे।

एक बार निराधार विचरण के क्रम में महाराज जी नदी के किनारे बबूल के वृक्ष के नीचे बैठकर भजन कर रहे थे। एक कृषक समीप से

गुजरते हुए बोला- का इहाँ बैठे हो ? गाँव चलो तो भिक्षा-भवन हो जाय! इहाँ बैठे से का होई ? भजन रात-बिरात फिर कर लेना। गाँव चलो। महाराजजी बोले ही नहीं। कुछ दूर जाकर वह पुनः लौटकर बोला- का इहाँ बैठे हो ? चलो गाँव! भिक्षा-भवन होइ जाई। जब उसने तीसरी बार कहा, तब महाराजजी ने कहा- तू काहे चिन्ता करत है ? भगवान् जेके डण्डा खटखटायेंगे, प्रेरणा करेंगे, ऊ खुद खवाई हमें! वह बोला- ठीक है बाबाजी! और चला गया। एक घण्टे में वह रोटी इत्यादि लेकर लौटा। महाराज ने कहा- तूही चला आया ? वह बोला- जी महाराज! भगवान् ने हमें ही डण्डा खटखटाया। महाराज की भाषा बड़ी अक्खड़ थी। किसी को अच्छा लगे या बुरा, जो जी में आया कह देते थे। आठ वर्षों तक ऐसे ही चलता रहा। अन्ततः अनुसुइया में स्वरूप मिल गया। आवागमन से मुक्ति मिली, कैवल्य स्वरूप की स्थिति मिली, सिद्धियाँ मिलीं, सब कुछ मिल गया।

हमने महाराज जी से जिज्ञासा की- हमलोगों को तो आकाशवाणी कभी नहीं हुई, आपको क्यों हुई ? महाराज जी ने बताया- हो! यह शंका हमें भी हुई थी। इस पर भगवान् ने हमें हमारे पिछले सात जन्मों का इतिहास बताया। अनुभव में देखने को मिला कि मैं सात जन्मों से लगातार साधु रहा हूँ। चार जन्म तो झूठ-मूठ ही साधुओं के बीच रहा। कहीं तिलक लगाये तो कहीं विभूति रमाये हूँ। कहीं एक कौपीन मात्र, हाथ में कमण्डलु और दण्ड है तो कहीं भगवा वस्त्र धारण कर रखा है; किन्तु झूठे ही घूम रहे हैं अर्थात् साधना जागृत नहीं थी। महात्मा वेष की बोली-भाषा जो परम्परा से बतायी जाती थी, वह सब याद था। गत तीन जन्मों से साधना भली प्रकार जागृत थी, जैसा होना चाहिए। पिछले जन्म में निवृत्ति हो चली थी; किन्तु मन में दो-तीन कौतूहल थे कि शादी-विवाह क्या होता है ? गाँजा पीकर लोग झूमते क्यों हैं ? इसमें कैसा सुख है ? और किंचित् देहाध्यास भी पीछा कर रहा था कि मैं भी कुछ हूँ, इस कुल का हूँ। वैसे थे सच्चे, संयम के पक्के; किन्तु मन में कौतूहल बना रहा इसीलिये जन्म लेना पड़ा।

'कहीं का ईंट, कहीं का रोड़ा।' भगवान् ने ऐसा जन्म दिया कि देहाभिमान करें भी तो किस पर ? शादी-विवाह करके थोड़े में दिखा-सुना दिया। दो चपत लगाया कि यह 'गुरु महाराज' और यह 'रास्ता'! यह पाप और यह पुण्य! कर भजन! हो, भगवान् ने कान पकड़कर हमें साधु बना दिया। हम जहाँ भी रहते थे, भगवान् चतुर्दिक रक्षा में साथ-साथ थे। श्मशान में भी बैठने पर प्रतीत होता था कि भगवान् की गोद में बैठे हैं। **'जाके रथ पर केसो ता कहँ कौन अँदेसो ?'** घुमा-फिराकर भगवान् ही हमें अनुसुइया ले गये। हम तो जानते भी नहीं थे। आकाशवाणी हुई कि शरीर से रहना है तो चित्रकूट जाओ। चित्रकूट पहुँचकर हमने भगवान् से पूछा, ''प्रभो! चित्रकूट तो लम्बा-चौड़ा है। चौरासी कोस (लगभग 300 किलोमीटर) के क्षेत्र का नाम चित्रकूट है। इसमें कहाँ रहें ? अनुभव में बताया- सती अनुसुइया चले जाओ!

उस समय अनुसुइया घनघोर जंगल था। एक समतल स्थली देख महाराजजी ने बैठना चाहा तो कुछ उत्तर की ओर चलने का संकेत मिला। वहाँ बैठने की सोच रहे थे कि थोड़ा दक्षिण जाने का निर्देश मिला। जब दोनों के मध्यस्थल पर आये तो सगुन मिला कि बैठ जाओ। वे बैठ गये तो संकेत मिला, जीवनपर्यन्त यहीं रहना है। पीछे दो-तीन टूटी-फूटी कोठरियाँ (कमरे), सामने मंदाकिनी गंगा! चारों ओर वृक्ष और झाड़ियाँ! दस गज दूरी पर ही कुछ दिखायी नहीं पड़ता था। छः माह पश्चात् ज्ञात हुआ कि वहाँ कुआँ भी है; क्योंकि वह झाड़ियों से ढँका हुआ था। छः-छः हाथ के लम्बे सर्प! अन्तिम कोठरी में शेर का निवास! बन्दर-भालुओं से भरा जंगल! बड़े-बड़े मच्छरों का प्रकोप! भगवान् का आदेश कि वहीं रहना है। महाराज जी वहीं बैठ गये। बैठते ही चौदह दिन निराहार उपवास में व्यतीत करना पड़ा; किन्तु सारी विभूतियाँ मिल गयीं। यह सब संस्कारों से निर्धारित पुनर्जन्म पर आधारित था।

युधिष्ठिर इत्यादि जुए में राज्य हारकर वनवासी जीवन व्यतीत कर रहे थे। युधिष्ठिर ने व्यथित होकर कहा कि वही सभी भाइयों के लिये दुःख का कारण बने। सान्त्वना देते हुए अर्जुन ने कहा- राजन्! आप चिन्ता न करें। आप पुनः महाराज बनेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण हमारे साथ हैं। हमने देवर्षि नारद से सुना है कि भगवान् श्रीकृष्ण विगत दस जन्मों से निरन्तर सन्त रहे हैं। प्रथम जन्म में वे 'यत्र सायं गृह मुनि' के रूप में विचरण करते थे अर्थात् चलते-चलते जहाँ भी शाम हो जाती, रात्रि वहीं विश्राम करते। आजीवन मौन रहे। एक कल्प में आप प्रभास क्षेत्र में स्थानीय जनता को धर्म का उपदेश करते हुए विचरण कर रहे थे। एक कल्प में पुष्कर क्षेत्र में बारह वर्षों तक एक पैर पर खड़े होकर यज्ञ कराते रहे। उस यज्ञ में आप बहुत दुर्बल हो गये थे। एक कल्प अर्थात् एक जन्म में नर-नारायण के रूप में वे बद्रीनाथ क्षेत्र में ध्यानस्थ थे। अवस्था उन्नत हो जाने पर एक कल्प में आप विष्णुरूप में अवतरित हुए। एक कल्प में वे वामन रूप में अवतरित हुए, अवतार भी कहलाये किन्तु पूर्णत्व की उपलब्धि नहीं हो सकी। इस कल्प में परब्रह्म परमात्मा को साक्षात् कर परमात्मस्वरूप में स्थित भगवान् श्रीकृष्ण आपके साथ हैं, इसलिये विजय आपकी ही होगी। इस जन्म में पूर्णत्व प्राप्ति के लिये उन्हें मात्र जन्म लेना ही शेष था; साधना में केवल तीन दिन ही शेष थे। अर्जुन के साथ बदरिकाश्रम में तीन दिनों तक ध्यानस्थ रहे। इसीलिये बाल्यकाल से ही अनहोनी घटनायें उनके जीवन में घटित होती गयीं।

पुनर्जन्म का अबाध क्रम सृष्टि में चला आ रहा है। कोई साधना की प्रवेशिका में है तो कोई प्राप्तिवाले जन्म के समीप है। ऋषभदेव जी चौबीस अवतारों में से चौथे अवतार कहे जाते हैं। जैन मतावलम्बी उन्हें आदिनाथ कहते हैं अर्थात् वहीं से उनके सम्प्रदाय का उद्भव है। उनके एक सौ पुत्रों में से अधिकांशतः विरक्त ब्राह्मण हो गये। जो ब्रह्मतत्त्व का चिन्तन करता है, ब्राह्मण है। चक्रवर्ती सम्राट के इक्यासी औरस पुत्र ब्राह्मण हो गये, नौ

योगेश्वर हो गये, नौ पृथ्वी का भार सँभालने वाले क्षत्रिय हो गये थे। अन्त में भरत एकछत्र सम्राट हुए। उन्होंने अपने प्रधान अमात्य से कहा- मंत्रीप्रवर! मेरी प्रशस्ति इस महेन्द्र पर्वत के शिखर पर उत्कीर्ण करायें। मंत्री वहाँ से लौटकर बोला- राजन्! ऐसी कोई शिला नहीं है जिसमें किसी नरेश का यशोगान न लिखा हो। आदेश हो तो उन्हें मिटाकर आपका यशोगान अंकित करायें। चकित भरत ने स्वयं शिखर पर जाकर उन सबका अवलोकन किया। प्रत्येक नरेश का कीर्तिमान दूसरे से बढ़-चढ़कर था जबकि इतिहास और किंवदन्तियों तक में उनकी कहीं कोई पहचान नहीं है। भरत ने विचार किया कि प्रशस्ति अंकित करा देने से भी क्या होगा ? कुछ दिनों में समाज भूल जायेगा। अस्तु यश की कामना भी एक भ्रान्ति ही है।

उनमें वैराग्य का उदय हुआ। राज्य का परित्याग करके सन्त हो गये। नदी के किनारे वृक्ष की छाया में भजन करने लगे। भक्तों ने वहीं उनके लिये एक कुटिया बना दी। एक बार शेर की दहाड़ से भयाक्रान्त आसन्नप्रसवा एक मृगी आश्रम के समीप मृगशावक को जन्म दे भाग गयी। वह शावक ऋषि की परिक्रमा करने लगा। ऋषि को दया आ गयी। कुटिया में मृगशावक पलने लगा। किशोर होते ही उसने छलाँग लगायी और जंगल में ओझल हो गया। भरत विकल हो गये, भजन छूट गया। मृग की चिन्ता में डूब गये। इतना अबोध, भोला-भाला! वह तो बहेलिये और चीते का भी मुँह सूँघ लेगा। कोई खा न डाले। कोई उसे पकड़ न ले। आज भी नहीं आया। भरत की आयु के वे अन्तिम क्षण थे। मृग का चिन्तन सजीव हो उठा। उनका शरीर छूटा तो उन्हें मृग का शरीर पुनर्जन्म में मिला। मृगयोनि में भी उन्हें पूर्वजन्म का ज्ञान था। अपनी भूल का उन्हें बोध हो गया। उन्होंने मृगों का झुण्ड त्याग दिया। महात्माओं की कुटिया में बेधड़क चले गये। जीवों के प्रति महात्मा स्नेहिल होते ही हैं। अच्छे वातावरण में जीवन-यापन होने लगा। किन्तु पशुदेह में भजन होते न देखकर इन्द्रायणी नदी में कमर तक जल में खड़े होकर अनशन कर चार दिन में शरीर त्याग दिया।

अग्रेतर जन्म में वह भरत मुनि हुए। उनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। अपने माता-पिता की वह आठवीं सन्तान थे। उनके सभी भाई विद्वान् थे; किन्तु पार्थिव शिक्षा में भरत की रुचि न थी। पिता के देहावसान के पश्चात् भाइयों ने उन्हें कृषि-कार्य में नियुक्त किया। चिड़ियों से खेत की रखवाली का कार्य सौंपा; किन्तु भरत उसमें भी असफल रहे। हताश होकर भाइयों ने उन्हें घर से निकाल दिया। भरत इसी दिन की प्रतीक्षा में थे। स्वयं जाने पर घरवालों द्वारा पीछा करने का भय था कि तू ही तो घर का उजाला था, दीपक था। चल लौट चलें! उन्हीं के द्वारा निष्कासित भरत बहुत प्रसन्न हुए, भजन में लग गये। योगक्षेम की व्यवस्था भगवान् द्वारा होने लगी।

जिस जंगल में भरत जड़वत् तपस्यारत थे, एक दिन कुछ दस्यु (डाकू) देवी की मूर्ति के समक्ष एक युवक की बलि देने जा रहे थे। ज्योंही उसे बलि देने का उपक्रम हुआ, अचानक वह उठा और भाग गया। सरदार झल्लाया कि बलि न मिलने से देवी अप्रसन्न हो जायेंगी अतः दूसरे किसी व्यक्ति को लाया जाय। भरत मुनि उसी जंगल में घूम रहे थे। डाकू उन्हीं को देवी के समक्ष ले गये। ज्योंही उन्होंने बलि देना चाहा, देवी की प्रतिमा से ही लपटें उठने लगीं। एक आकृति प्रकट हुई। उसने डाकुओं के हाथ से खड्ग छीनकर उन सभी का संहार कर दिया। जब वहाँ शान्ति छा गयी तो जड़भरत धीरे से उठे और चुपचाप आगे बढ़ गये।

इस घटना के तुरन्त बाद ही महाराजा रहूगण गुरु की तलाश में गंगा के किनारे पालकी में भ्रमण कर रहे थे। जहाँ जड़भरत के समीप से पालकी गुजरी, एक कहार बीमार पड़ गया। राजा ने कहा- किसी दूसरे कहार की व्यवस्था करो। जड़भरत समीप ही थे, पालकी ढोने के लिये लगा दिये गये। चींटियों को बचाकर चलने में कभी उछलकर पाँव आगे रख देते, कभी दाहिने-बायें झुक जाते जिससे पालकी का संतुलन बिगड़ जाता था। राजा ने कहा- ''कैसे चलते हो तुमलोग? हमें झटके लग रहे

हैं।'' उन कहारों ने कहा- ''राजन्! हमलोग तो ठीक चल रहे हैं। यह नया कहार कदम मिलाकर नहीं चल रहा है।'' राजा ने नये कहार से कहा- ''तुम दुबले- पतले भी नहीं हो! क्या तुमसे भार ढोते नहीं बनता? थक गये क्या?''

उस समय तक जड़भरत को लक्ष्य की प्राप्ति हो चुकी थी। जीवन में पहली बार वे बोले- ''राजन्! दुबला और मोटा वह होता है जिसे देहाध्यास होता है, थकता भी वह है जो चलता है। और भार ढोना भी तू क्या जाने?'' रहूगण ने सोचा- गुरु ढूँढ़ने निकला था। गुरुजी मिल तो नहीं गये? वह पालकी से कूद पड़े। साष्टांग दण्डवत् कर निवेदन किया, ''भगवन्! कल्याण का मार्गदर्शन करें।''

जड़भरत ने कहा, ''राजन्! एक परमात्मा की शरण जाओ। वही शाश्वत है। प्रकृति तो परिवर्तनशील है।'' राजा ने पूछा- ''शरण जाने की विधि क्या है?'' महात्मा बोले- ''आप्तकाम महापुरुष के चरणों की धूल में लेटे बिना वह विधि, परमात्म-दर्शन की साधना जागृत नहीं होती।'' रहूगण राजा तो थे ही। उन्होंने अनेक देवी-देवताओं, कुलदेवी, युद्ध का देवता, सीमा रक्षक देवता इत्यादि के अनेक मन्दिर बनवा रखे थे। उन्होंने पूछा- ''भगवन्! ये देवी-देवता?'' महात्मा भरत ने कहा- ''राजन्! ये बटेर के समान बुज़दिल, कौए के समान भला-बुरा सब कुछ खा लेनेवाले, बगुले की तरह साफ-सुथरे, बाहर से ध्यानस्थ किन्तु भीतर से घात लगानेवाले तथा उल्लू के समान अचेत आत्माओं की हत्या करनेवाले हैं, इससे अधिक ये कुछ नहीं हैं। भरत को इन देवी-देवताओं का प्रमाण मिल चुका था। डाकुओं ने जीवनपर्यन्त जिन देवी को बलि चढ़ाया, प्राणों पर बन आने पर उन देवी ने अपने ही भक्तों की रक्षा नहीं कर सकीं।

पूज्य गुरुदेव प्रायः कहते थे- ब्रह्मलीन महापुरुष के ऊपर जादू-टोना, भूत-प्रेत कुछ भी प्रभाव नहीं डाल पाते- **'हरि भक्तन के पास न आवे, भूत-प्रेत पाखण्ड।'** भरत परम ब्रह्म से संयुक्त महापुरुष थे

इसलिये उनके ऊपर प्रभाव नहीं पड़ा। पशुयोनि में भी उन्हें याद था कि मैं ऋषि रहा हूँ।

पुनर्जन्म से अनुप्राणित घटनायें पूज्य गुरु महाराज के धाम सती अनुसुइया में आये दिन दृष्टिगोचर होती थीं। वहाँ बन्दरों का एक झुण्ड था। उस समूह का नेतृत्व करनेवाले बन्दर को महाराज जी महंत कहा करते थे- महंत अपनी टोली लेकर आज इधर गया! वह जिधर संकेत करता, पूरी मण्डली उधर ही चल पड़ती। उस झुण्ड से अलग एक हृष्ट-पुष्ट बन्दर अकेला ही रहता था। महाराज उसे ब्रह्मचारी कहते थे। महन्त की हिम्मत नहीं थी कि उसे अकेले भगा दे। महन्त के संकेत पर पूरी टोली मिलकर मार-मार कर उसे भगाया करती थी। वह धीरे- धीरे हजारों फीट ऊपर पर्वत शिखर पर रहा करता था।

बड़े सबेरे महाराज जी ध्यान में बैठते तो वह भी पहाड़ से उतरकर महाराज जी के सामने थोड़ी दूरी पर ध्यान की मुद्रा में बैठा रहता। उसकी भी पलकें खुली रहतीं। वह शान्त स्थिर बैठा रहता। एक रोम तक न हिलता। हाथ-सिर सम्पूर्ण शरीर में कोई हलन-चलन नहीं होती थी। हाँ, कभी- कभी वह आँखें मटका कर महाराज की ओर देख लेता और सावधान-मुद्रा में दो-दो घण्टे बैठा रहता। जब महाराज खाँसते या धूनी खोदने लगते तब वह भी इधर-उधर देखने लगता, कभी खुजलाने लगता। महाराज उसके लिये आटे और चोकर का एक मोटा-सा टिक्कड़ बनवाकर रात में ही रख लेते और प्रातः उसे दे देते थे। उसे लेकर वह बगल में दबाता, तीन पाँव से ही पहाड़ पर चढ़ जाता और दूसरे दिन ठीक उसी समय अँधेरे-अँधेरे में आकर महाराज के समक्ष बैठ जाया करता था। चार-छः महीने यह क्रम चलता रहा।

एक दिन महाराज जी ने उससे कहा कि जब तुम साधु हो तो अपने भोजन की व्यवस्था भी कर लिया करो। बाबा लोग सिर पर लादकर पन्द्रह किलोमीटर दूर चित्रकूट से आटा लायें, उससे रोटी बनाकर तुझे क्यों

खिलायें? उसे रोटी देते हुए महाराज ने कहा- अपना चेताय लिया करो।

दूसरे दिन एक कुर्मी आधा मन (लगभग 20 किलोग्राम) चना लेकर सवेरे के पाँच बजने से कुछ पहले ही अनुसुइया आश्रम में आया। महाराज जी को प्रणाम कर वह बोला, "महाराज जी! क्या यहाँ कोई ब्रह्मचारी बन्दर है?" महाराज बोले, "तू कैसे जानता है उसको?" उसने कहा, "महाराज जी! गाँव से दूर जंगल के किनारे अपने खेतों की रखवाली में मैं मचान पर लेटा हुआ था। स्वप्न में उस बन्दर ने मेरा हाथ पकड़कर कहा- उठ! सोता क्या है? मैं ब्रह्मचारी बन्दर हूँ। सती अनुसुइया आश्रम में रहता हूँ। चल, मेरे लिये चना लेकर चल। हम उठकर खड़े हो गये। आवाज भी दिया- भैया! यहाँ कौन है? किसने हमें छुआ? जंगल में कहीं कोई आहट न मिलने पर आधा घण्टा बाद हम सो गये। पलक झपक ही रही थी कि उस बन्दर ने एक चपत लगायी और बोला- सुना नहीं तुमने! हमने कहा था चलो! तू फिर सोने लगा? हमने सोचा- एक बार उसने मुझे झकझोरा, दूसरी बार थप्पड़ मारा, अब सोते हैं तो तीसरी बार कहीं अधिक दण्ड न दे दे। इसलिये महाराज! रात को ही हम नहा-धोकर चना लेकर चले आये हैं। कहाँ है वह?"

महाराज ने कहा- "अभी आता ही होगा।" इतने में ठीक समय पर ब्रह्मचारी बन्दर आकर बैठ गया। महाराज जी ने कहा- "बस बेटा ब्रह्मचारी! तुम सच्चे साधु हो। तुम्हारा भजन ठीक है। अब तुम्हें चेताने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हें भोजन नियमित मिलेगा। तू कर भजन!"

कुर्मी जमींदार ने कहा, "नहीं महाराज! जब तक मैं हूँ, ब्रह्मचारी जी को हर सप्ताह आधा मन चना भेजता रहूँगा।"

अस्तु, पशुयोनि में भी कुछ आत्माओं को पूर्ण ज्ञान रहता है। राम-चरितमानस में गोस्वामी जी कागभुशुण्डि महाराज का संस्मरण लिखते हैं-

सुधि मोहि नाथ जन्म बहु केरी।
सिव प्रसाद मति मोहँ न घेरी।। (मानस, 7/95/10)

महाराज जी को पशु-पक्षियों से बड़ा स्नेह था। वे कहते थे, जानकी जी ने तोता-मैना पाल रखा था-

सुक सारिका जानकी ज्याये।
कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाये।।
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही।
सुनि धीरजु परिहरइ न केही।। (मानस, 1/337/1-2)

सीताजी ने जिन शुक-सारिकाओं को पाल रखा था, वे कह रहीं थीं- कहाँ गयी वैदेही? सिया कहाँ गयी?

साधु असाधु सदन सुक सारीं।
सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं।। (मानस, 1/6/10)

साधुओं के सुग्गे राम का सुमिरन करते हैं जबकि असाधु के तोते गिन-गिनकर गालियाँ देते हैं। महाराज जी ने भी एक सुगिया पाल रखा था। उस समय ब्रह्मचारी जी (धारकुण्डी महाराज) महाराज जी की सेवा में आ गये थे। वह महाराज जी की रोटी बनाते, झाड़ू लगाया करते थे। ब्रह्मचारी जी को देखते ही वह सुग्गी सफेद आँख निकालकर पंजा उठाकर किट-किट करते हुए बड़ी जोर से बिगड़ती थी। स्वामी जी कहते- किसी दिन हम तुम्हारी गर्दन मरोड़ देंगे। इस पर वह सुगिया चीखती थी- ''महाराज जी! महाराज जी! ब्रह्मचारी कहता है मैं गटई मरोड़ दूँगा। मारिये इनको। पिटाई करिये इनकी।'' वह बहुत पढ़नेवाली शुकी थी। महाराज जी कहते थे- पिछले किसी जन्म में यह तुम्हारी पत्नी रही है। तू इसे छोड़कर भाग गया होगा इसीलिये यह तुझसे नाराज रहती है। महाराज जी का मन बहलाव थी सुगिया।

एक दिन सुग्गी मर गयी। महाराज जी कहते थे- ''हो, पिंजरा खाली हो गया। हर जीव की आयु तो निश्चित है। बेचारी, चली गयी। क्यों रे! साधुओं के स्पर्श-सान्निध्य से इन पशु-पक्षियों को भी लाभ होता है कि नहीं? इतने दिनों हमने उसे अपने हाथों से खिलाया, उस पर हाथ

फेरा, गोद में बैठाया। साधु के स्पर्श से इन जीवों को भी कुछ लाभ होता है क्या? सुग्गी हमारी गयी कहाँ?''

महाराज जी को अनुभव में दिखायी पड़ा कि आश्रम से 7-8 किलोमीटर दूर जंगल के सेमरिया गाँव में नवल पण्डित के यहाँ वह सुग्गी कन्या के रूप में जन्म लेगी। महाराज जी ने दूसरे दिन उस पण्डित को बुलवाकर पूछा- ''क्यों रे, तुम्हारे लड़के कितने हैं?'' उसने बताया- ''चार हैं।'' ''और लड़की?''- ऐसा पूछने पर पण्डित ने बताया- ''लड़की तो नहीं है महाराज! प्रबल इच्छा है कि एक कन्या हो जाती तो कन्यादान करने को हो जाता। बिना कन्यादान के पिता का कल्याण नहीं होता।'' महाराज ने कहा- ''जा, हमारी सुग्गी तुम्हारे यहाँ जन्म लेगी।'' वह बोला- ''महाराज! मैं सब कुछ पा गया।''

नवल के यहाँ कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम उसने सुग्गी ही रखा। उन दिनों बाल विवाह का प्रचलन था। नवल उस सुग्गी के विवाह का निमन्त्रण लेकर महाराज जी की सेवा में आया। हम भी वहीं खड़े थे। उसने कहा- ''महाराज जी! आपके सुग्गी की शादी है। आप चलें, करें!'' महाराज जी ने कहा- ''बस बेटा! अब सुग्गी तुम्हारी है। हमारा सम्बन्ध वहीं तक था। धूमधाम से उसकी शादी करो, उसे विदा करो।'' महाराज कहते थे- देखो हो, साधारण पक्षी पण्डिताइन हो गयी!

महाराज जी ने एक कुत्ता पाल लिया। वह लगभग दस इंच ऊँचा, तीन फीट लम्बा, बहुत ही मजबूत, चायनीज नस्ल का कुत्ता था। उसके पाँव लगभग चार-चार इंच के थे। वह खुदुर-खुदुर चलता तो बड़ा अच्छा लगता था। वह अच्छी गति पकड़ लेता था और कैसा भी कुत्ता हो, उससे जाकर लड़ जाता था। रहता तो वह नीचे ही था किन्तु नीचे से ही उस बड़े कुत्ते को कट-कट-कट काट लेता और बड़ा कुत्ता भाग जाता था।

अनुसुइया आश्रम में एक दरवाजे के स्थान पर शटर लगा था। वह कुत्ता शटर के पास दिन-रात रहा करता था। शटर के बीचोबीच में थोड़ा

स्थान रिक्त था। उसी में से निकलकर मध्यरात्रि में कुछ देर के लिये वह जंगल में चला जाता था। महाराज जी हमलोगों से कहते कि कई दिन से यह रात में कई-कई घण्टे जंगल में गायब हो जाता है। पता लगाओ, यह जाता कहाँ है?

एक दिन किसी ने देख लिया कि वह आश्रम से कुछ दूरी पर बैठकर मांस खाता है। महाराज ने पूछा, ''यह मांस पाता कहाँ से है?'' लोगों ने पुनः खोजबीन की और महाराज जी से बताया कि आश्रम के पीछे जंगल के किनारे पहाड़ के उस कोने में शेर की एक गुफा है। उसी में से यह मांस निकाल लाता है।

महाराज जी चौंके- ऐं! शेर की गुफा में जाता है? किसी दिन वह गुफा में रहा तब क्या होगा? इसकी आदत बिगड़ गयी है। शेर किसी दिन इसको पकड़ लेगा! यह मारा जायेगा। भैरव की पिटाई हुई। उसे मारते थे और कहते थे- और जायेगा शेर की गुफा में? साधु के साथ रहता है तो साग-पात खा, अन्न ले, फलाहार कर, मांस क्यों खाता है? महाराज जी ने उसे डाँट-फटकार दिया। दस दिन वह गुफा में नहीं गया; किन्तु एक दिन पुनः गायब हो गया, लौटकर आया ही नहीं। महाराज जी ने कहा- पता लगाओ, अभी मरा नहीं है, जीवित है। हमें उसकी श्वास सुनायी दे रही है लेकिन आ नहीं रहा है। है कहाँ? जरा पता लगाओ।

बड़े सवेरे हम बगीचे की ओर जाने लगे। पहाड़ी पर ऊपर की ओर एक झोपड़ी में धारकुण्डी महाराज भजन किया करते थे। उन दिनों वह धारकुण्डी गये थे, झोपड़ी खाली थी। भैरव उस झोपड़ी के सामने चुपचाप बैठा था। हमें देखते ही वह भों-भों करता हमारी ओर आया। कभी इधर तो कभी उधर दौड़कर भूँकता और हमारे पास आता। वह हमें बताना चाह रहा था कि वह वहाँ बैठकर ड्यूटी दे रहा है। महाराज जी से बताया कि वह वहाँ छिपकर बैठा था। आपके भय से आश्रम में नहीं आया। इसे माफ किया जाय। महाराज ने कहा- अच्छा-अच्छा! आज इसे माफ किया, फिर न जाय।

उसी दिन धारकुण्डी स्वामी जी महाराज जी का दर्शन करने जीप से आये। हमने महाराज जी से कहा- शेर की गुफा में जाने की आदत भैरव को पड़ गयी है, मार खाने पर भी कभी-कभी चला ही जाता है। इसे धारकुण्डी स्वामी जी के यहाँ भेज दें। वहाँ शेर की गुफा इसने देखी भी नहीं है। यहाँ रहेगा तो किसी दिन शेर पकड़ सकता है। वहाँ जिन्दा तो रहेगा! महाराजजी कुछ बोले नहीं। जाते समय हमने भैरव को उठाकर उनकी जीप में रख दिया।

अभी जीप सौ-पचास मीटर ही गयी होगी कि महाराज जी बोले- क्यों रे! वह भैरव मेरा शौक था, सिंगार था, मन बहलाव था। तुमने उसे क्यों दे दिया? हमने कहा- महाराज! उसकी गुफा में जाने की आदत है, किसी दिन शेर पकड़ लेता। आपसे पूछा, आप कुछ बोले नहीं। मौन स्वीकृति समझकर हमने उसे गाड़ी में बैठा दिया।

महाराज जी थोड़ा गंभीर होकर बोले- "क्यों रे! यहाँ रहता तो शेर खा लेता? हमारे जीते ही शेर खा लेता उसे? और सहितानन्द (स्वामी सच्चिदानन्द) की हैसियत है कि शेर से बचा लेगा उसे?" महाराज जी ने पचासों खरी-खोटी सुनायी। जीप तो निकल ही गयी थी। बात आयी-गयी हो गयी।

लगभग एक वर्ष पश्चात् धारकुण्डी जाने की वर्षगाँठ पर स्वामी सच्चिदानन्द जी (ब्रह्मचारी) ने वहाँ त्रिशूल स्थापना के उत्सव में गुरु महाराज को बुलाया। महाराज जी वहाँ गये। हमलोग भी साथ थे। वहाँ जाते ही भैरव कुत्ता महाराज से लिपट पड़ा, हमलोगों से लिपट पड़ा। वह बहुत प्रसन्न था। त्रिशूल स्थापन उत्सव में भण्डारा-प्रसाद का भी आयोजन था। क्षेत्रीय भाविक भक्तों के साथ गाँव के कुत्ते भी आये थे। भैरव उन कुत्तों को देखकर भूँकने लगा, गले की जंजीर तुड़ाने लगा। किसी ने कील से जंजीर निकाल दी। भैरव भूँकते हुए उन कुत्तों पर झपट पड़ा। वे पूँछ दबाये भाग गये। आश्रम परिसर से बाहर खदेड़ कर ही भैरव दम लेता।

लोगों को अच्छा लगता, वे ताली बजाते, फिर उसे कील से बाँध देते। कुत्ते भी भैरव को देखकर भागने लगते कि कौन-सा जानवर आ गया।

एक बार पता नहीं कैसे, भैरव खुल गया। एक कुत्ते के पीछे भागा और लौटकर नहीं आया। संध्या का समय था। महाराज के विदाई का समय हो गया था। महाराज जी ने भैरव के बारे में पूछा। लोगों ने बताया- ''महाराज जी! वह तो सीकड़ी समेत किसी कुत्ते के पीछे निकल गया।'' महाराज ने कहा- पता लगाओ। सबने जंगल में इधर-उधर ढूँढ़ा, नहीं मिला तो सोचा कुत्तों का पीछा करते गाँव तक चला गया होगा। महाराज ने कहा- देखो! कहीं जानवर न खा ले।

महाराज जी धारकुण्डी से विदा हो गये। आश्रम से 5-6 किलोमीटर पर धारकुण्डी आश्रम की ही बगिया है। उसके समीप पहुँचने पर एक शेर ने छलाँग लगाया और दस फीट की ऊँचाई से कार के ऊपर से दूसरी ओर कूद गया। महाराज जी ने कहा- ओह! यह हमें बताने आया है कि मैं खा गया हूँ। भैरव को खा गया! शेर खा गया। गया हमारा भैरव!'' किसी को विश्वास ही न हो कि जहाँ दस हजार आदमियों की भीड़ है, उन सबके बीच से शेर कैसे खा लेगा?

धारकुण्डी स्वामी ने भैरव को बहुत ढूँढ़वाया। तीन दिन पश्चात् शेर की गुफा के सामने उसकी जंजीर और एक टाँग मिली। उन्होंने गुरु महाराज को संदेशा दिया- महाराज से निवेदन कर देना कि शेर खा गया। हमें याद हो आया कि महाराज जी ने कहा था कि ''सहितानन्द की हैसियत है कि शेर से बचा ले! मोरे जियतै शेर खाइ लेई।''

वस्तुतः जंगल में जब कभी भीड़भाड़ होती है तो वन्य पशु कुछ समीप ही छिपकर देखते रहते हैं कि कोई भूला-भटका इधर आवे तो उसे आहार बनायें। कुत्ता उधर से ही भागा। भैरव की जंजीर झाड़ी में उलझ गयी, शेर ने पकड़ लिया। गाँव वाला कुत्ता बिना पट्टे-जंजीर का था, निकल गया।

भैरव की मृत्यु से महाराज जी उदास थे। विगत स्मृतियाँ आने लगीं। वह महाराज जी के हाथ से दूध पिया करता था। जब वह दूध न पीता, महाराज जी उसे दिखाकर दूध वाले खप्पर में बताशा डालते। वह जुबान से दो-चार बार चपर-चपर दूध चाटता, पुनः बैठ जाता। महाराज जी पुनः बताशा डालते। दूध पीने में वह बहुत मनवनिया लेता था। लगभग डेढ़ किलो दूध उस भिक्षापात्र (खप्पर) में रहता था।

जब भैरव किसी भी प्रकार दूध न पीता तो आश्रमीय सेवक, लोग जिन्हें मंगल दादा कहते थे, स्थानीय अहीर परिवार से थे, वह कहते- "सरकार, अब ई ना पिई। न हो तो मैं अब खप्पर साफ कर दूँ?" वह खप्पर उठाकर सारा दूध पी जाया करते थे।

हमलोग कटाक्ष करते- कुत्ते का जूठा पी लिया? वह सरल भाव से कहते- स्वामी जी! कुत्ते-बिल्ली का जूठा भी कहीं अशुद्ध होता है? अपने में मस्त व्यक्तित्व!

महाराज जी विचार करते थे- भैरव गया कहाँ? इतने दिन उसे हमने खिलाया-पिलाया, उस पर हाथ फेरा, वह मेरे आसन पर बैठता था, सन्तों के सान्निध्य से इन जीव-जन्तुओं को भी कोई लाभ होता है या नहीं? वह किस गति को प्राप्त हुआ?

एक दिन महाराज जी को अनुभव में दिखायी पड़ा। एक देवदूत महाराज जी को कार्यालय में लगी अनेक कुर्सियों में सबसे ऊँची कुर्सी की ओर इंगित कर कहा- महाराज! आपका भैरव कुत्ता इस कुर्सी पर बैठेगा। कुछ लोग कुर्सियों पर बैठने लगे थे। सबसे ऊँची अच्छी-सी कुर्सी खाली थी। तब तक एक अत्यन्त काला स्थूलकाय व्यक्ति आकर कुर्सी पर बैठा। देवदूत ने बताया- महाराज! यह है भैरव। आपके दर्शन-स्पर्श के परिणाम में इसने मानव-तन पाया और साहब हो गया। महाराज बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने कहा, "हो! हमारा भैरव साहब हो गया! भगवान ने दिखाया है मुझे!

महात्माओं के संसर्ग से जीवों का कल्याण होता है। मानस में है-

जड़ चेतन मग जीव घनेरे।
जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे।।
ते सब भये परम पद जोगू।
भरत दरस मेटा भव रोगू।। (मानस, 2/216/1-2)

जिस महापुरुष के घट में भगवान कार्य करते हैं, भगवान के वरदहस्त के नीचे जिनकी साधना चल रही होती है ऐसे महापुरुष के दर्शन से जीव परमपद के योग्य हो जाता है और उसमें भी जो साधना में प्रवृत्त हो जाता है, भाव ही भरत है, अस्तु जो भावपूरित हृदय से साधना में लग जाता है तो भवरोग भी मिट जाता है। क्रमोन्नत विकास से यह परिणाम मिलता है, तब तक पुनर्जन्म का क्रम चलता ही रहता है।

महाभारत का एक आख्यान है। कौरव पक्ष के अनेक महारथियों द्वारा निःशस्त्र अभिमन्यु की हत्या का समाचार सुनकर अर्जुन व्याकुल हो गया। महाबली भीम तथा अन्य भाइयों को उपालाभ्य देते हुए बोला- आप सब खाक शूरवीर हो! एक बालक की रक्षा नहीं कर पाये। भीम ने कहा- हमलोगों ने सम्पूर्ण पराक्रम लगा दिया किन्तु जयद्रथ के कारण चक्रव्यूह में प्रवेश ही नहीं कर पाये। अर्जुन बोला- वही जयद्रथ जिसकी गर्दन पकड़कर अपने भ्राताश्री के चरणों में गिराया था? जिसे आपने दास बनाया था, उसमें इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी?''

श्रीकृष्ण ने बताया- ''जब भ्राताश्री युधिष्ठिर ने उसे दासवृत्ति से मुक्त कर दिया, उसने शंकरजी की आराधना की। भोलेनाथ ने दर्शन दिया। जयद्रथ ने वर माँगा कि वह पाण्डवों का वध कर सके। भगवान शिव ने कहा, ''पाण्डव अवध्य हैं, भगवान श्रीकृष्ण के वरदहस्त के संरक्षण में हैं। उन्हें कोई नहीं मार सकता। हाँ, जिस दिन युद्धभूमि में अर्जुन नहीं रहेगा, उस दिन तुम चारों भाइयों पर भारी पड़ोगे। आज वही दिन था। जयद्रथ को वरदान मिला था।'' अर्जुन ने कहा, ''जयद्रथ!

जयद्रथ! सारे अनर्थों की जड़ जयद्रथ! कल सूर्यास्त से पहले जयद्रथ का वध न कर दूँ तो दहकती चिता में प्रवेश कर जाऊँगा।''

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को डाँटा- ''तुम भरतवंशियों को हो क्या गया है? तुम प्रतिज्ञा क्यों करते हो? प्रतिज्ञा के बन्धन में भीष्म शरशैय्या पर पड़े हैं! तुम भी प्रतिज्ञा कर रहे हो?'' अर्जुन ने कहा- ''केशव! प्रतिज्ञा तो अब मैं कर चुका।'' श्रीकृष्ण ने समझाया, ''विचार तो कर लो, समस्या क्या है? हो सकता है कोई अच्छा समाधान निकल आये!'' अर्जुन ने कहा, ''नहीं, केशव! प्रतिज्ञा पूरी होनी चाहिए। रथ को युद्धभूमि की ओर ले चलें!''

भगवान् ने देखा, यह तो मचल गया जबकि बात जरा-सी है- जयद्रथ-वध। व्यर्थ में क्यों घोड़े दौड़ाऊँ? ऐसा उपाय कर दूँ कि स्वयं जयद्रथ ही यहाँ चला आये मरने के लिये! अपरान्ह हो चला। अर्जुन अत्यन्त वेग से कौरव सेना का विध्वंस करते, बार-बार सूर्य की ओर देखते आगे बढ़ रहा था। अकस्मात् श्रीकृष्ण ने रथ रोक दिया। अर्जुन ने पूछा- ''प्रभो! क्या हो गया?'' श्रीकृष्ण ने कहा- ''घोड़े थक गये हैं पार्थ! इन्हें जलाशय चाहिये, मालिश चाहिये।'' अर्जुन ने बाणों का घेरा बनाया, जल की व्यवस्था की। घेरे की रक्षा करने लगा। दुर्योधन ने कहा- जिसके बेटे को हम सात महारथियों ने मिलकर मारा, वह अभिमन्यु तो रथ पर था। आज उसका पिता रथविहीन है। सब मिलकर उसे मार डालो। पूरी कौरव सेना टूट पड़ी; किन्तु अर्जुन तो अर्जुन ही था। उसने दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर सबको तितर-बितर कर दिया। दो घड़ी बाद भगवान् श्रीकृष्ण बोले- रथ तैयार है पार्थ! युद्ध पुनः आरम्भ हो गया।

कुछ दूर जाने पर श्रीकृष्ण ने रथ पुनः रोक दिया। अर्जुन ने पूछा- अब क्या हो गया? भगवान् उदास हो बोले- सूर्य अस्त हो गया अर्जुन! चिता तैयार हो गयी। अर्जुन चिता पर बैठ गया। अरणि-मन्थन से अग्नि प्रज्वलित करने का उपक्रम भी होने लगा। जीवन से निराश अर्जुन भगवान् को खरी-खोटी सुनाने लगा- तब तो कहते थे **'निमित्तमात्रं भव**

सव्यसाचिन।'- अर्जुन! तुम निमित्त मात्र बनकर खड़े भर रहो। कर्ता-धर्ता तो मैं हूँ। विजय तुम्हारी होगी। इन मेरे द्वारा मारे हुए मुर्दों को मार। यश प्राप्त कर। काम मैंने कर दिया है, यश तू ले ले! मुझसे बड़ी भूल हुई जो आप पर मैंने विश्वास कर लिया।

भगवान् का सिर इन उलाहनों से और भी झुकता जा रहा था। शकुनि को पूरा विश्वास हो गया कि अर्जुनरूपी कण्टक दूर हुआ। उसने दुर्योधन से कहा, ''प्रिय भांजे! इस ग्वाले को तो देखो! कैसा गर्दन झुकाये खड़ा है। ऐसा करो, जयद्रथ को बुलाओ। प्रिय दुर्योधन! पुत्रप्राप्ति में जो सुख होता है, उससे भी सहस्रों गुना अधिक सुख शत्रु को मरते हुए देखने में होता है।

जयद्रथ भी वहीं आ गया। अर्जुन का उपहास करते बोला- ''गाण्डीवधारी अर्जुन! दिव्यास्त्रों के ज्ञाता अर्जुन! द्रोणशिष्य! प्रतिज्ञा पूरी करो! शीघ्र जल मरो! इस ग्वाले के ऊपर फूल रहा था?'' वह लगा हँसने।

भगवान् ने देखा- जयद्रथ ठीक निशाने पर खड़ा है। उन्होंने सिर उठाकर कहा- ''अर्जुन! तुम यह भी भूल गये कि एक महारथी शूरवीर चितारोहण कैसे करता है? जिस बाण से शत्रु का वध करना था, उसका संधान करके, वीर आसन से बैठकर, शत्रु के गले का निराशा साधकर प्रत्यंचा खींचकर चितारोहण करो।'' कौरव बहुत हँसे! देखो, बेचारा मरने जा रहा है और यह उपदेश देने से अन्तिम समय में भी बाज नहीं आया।

अर्जुन भी भुनभुनाया- जब मरना ही है तो क्या शवासन, क्या वीरासन? किन्तु बचपन से ही भगवान् का सेवक था, आज्ञाकारी था, आदेश का पालन किया। अदृश्य प्रेरणा से अर्जुन ने निशाना साधा। भगवान् ने कहा- ''अर्जुन! वह देखो सूर्य, और यह रहा जयद्रथ। सूर्य अस्त नहीं हुआ था। यह तो बादलों की ओट में था। अर्जुन ने बाण छोड़ दिया। जयद्रथ का गला कट गया। अर्जुन की प्रतिज्ञा तो पूरी हो गयी किन्तु यह उसे बहुत महँगी पड़ी।

महाभारत का संग्राम समाप्त हो गया। एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, ''अर्जुन! तुम्हारी ही तरह मेरा एक भक्त और है। चलो, तुम्हें उसका दर्शन करवा लाते हैं।'' राजा मोरध्वज के यहाँ अर्जुन और श्रीकृष्ण पहुँचे। दोनों ने वेश बदलकर साधुवेश धारण कर लिया था। हाथ में कमण्डलु, एक शेर भी साथ में था। राजा संतों को आया देख अत्यन्त प्रसन्न हुआ, सादर प्रणाम किया और बोला- प्रभो! कोई सेवा ? महात्मा ने कहा- केवल भिक्षा राजन्! हाँ, यह शेर भी भोजन करेगा। राजा ने कहा- अभी वधशाला से उसके लिये भी आहार की व्यवस्था कर देते हैं। एक ने कहा- नहीं, हमारा शेर वधशाला का भोजन नहीं करता। तुम अपनी कोई वस्तु दो।

राजा ने कहा- मैं अपना सिर देता हूँ। महात्मा वेशधारियों ने कहा, ''नहीं, तब हमलोगों का स्वागत कौन करेगा ? विदा कौन करेगा ? ऐसा करो, अपने पुत्र का दान कर दो।'' राजा ने कहा- पुत्र पर आधा भाग पिता का होता है, वह तो मैंने दिया। शेष अर्द्धभाग महारानी साहिबा का होता है, उनसे पूछना पड़ेगा। महारानी ने कहा- आपने दे दिया तो हमने भी दिया। महात्माओं ने कहा- पुत्र से भी तो पूछ लो। पुत्र बहुत प्रसन्न था। वह बोला- मेरा अहोभाग्य! यह नश्वर शरीर माता-पिता के काम तो आया।

राजकुमार को जल्लाद कैसे काटते ? संत वेशधारी श्रीकृष्ण बोले- राजन्! यह शेर केवल दाहिने अंग का ही मांस खाता है। आप और महारानी दोनों आरे से राजकुमार के शरीर के दो हिस्से कर दें। आरा उठाते समय महारानी की आँखों में अश्रु छलक आये; क्योंकि माँ के हृदय में बच्चे के अतिरिक्त कुछ होता ही नहीं, भगवान् भी नहीं। मरणासन्न बुढ़िया भी अपनी सन्तान की रट लगाती रहती है। उसके आँसुओं को देख उन महात्मा ने कहा- ''रो-धोकर दिया हुआ भिक्षा मेरा शेर ग्रहण नहीं करता। महारानी ने कहा- ''प्रभो! पुत्र तो जा ही रहा है, अब धर्म भी जाना चाहता है। ऐसी कृपा करें कि मेरे आँसू जमीन पर न टपकें। अश्रु आँख में ही रोक दम्पति ने पुत्र को आरे से दो खण्डों में विभाजित कर दाहिना भाग शेर को अर्पित किया और बायाँ महल में शय्या पर सुला दिया।

महात्माओं को भोजन परसा जा रहा था। महात्मा ने कहा- उस बच्चे के लिये भी थाली परस दो। राजा ने यह नहीं पूछा कि अभी-अभी तो उसका वध कराया, अब थाली किसके लिये? वह अन्तरंग भक्त था। भगवान् पर उसका दृढ़ विश्वास था। उन्होंने थाली लगा दी। महात्मा ने कहा- पुत्र का नाम लेकर उसे पुकारो। आवाज देते ही उनका पुत्र महल के कक्ष से बाहर आ गया, आरा तो उसे कहीं छू भी नहीं सका था। वह आकर बैठ गया। महात्माओं के साथ भोजन करने लगा। किन्तु महात्मा बना हुआ अर्जुन अपनी भूख-प्यास भूल गया। चकित होकर उसने कहा- प्रभो! आपमें इतनी क्षमता! जिसकी आधी देह शेर खा गया, उसे भी मैं जीवित देख रहा हूँ। तब आपने मेरे अभिमन्यु को क्यों जीवित नहीं कर दिया?

श्रीकृष्ण ने कहा- अर्जुन! उसमें मेरा कोई दोष नहीं है। तुमने हमारी सुनी ही कब? तुम तो धनुष टंकार रहे थे। हमने कहा था, विचार तो कर ले, इससे भी अच्छा समाधान हो सकता है। तुमने कहा, केशव! प्रण पूरा होना चाहिए। हमने कहा भी कि थोड़ा सोच लो। तुमने कहा, कुछ नहीं प्रभो! रथ को युद्धभूमि की ओर ले चलिये। तुम्हारा प्रण पूरा हुआ। इसमें मैं क्या करता?

संत कबीर सचेत करते हैं-

गुरु की आज्ञा लंघि के, जो नर कतहूँ जाय।
जहाँ जाय तहँ काल है, कह कबीर समुझाय।।

सतगुरु की आज्ञा का उल्लंघन कर यदि साधक कहीं चला जाता है, भले ही अपनी समझ से अत्यन्त सुरक्षित स्थल पर जा रहा हो, वस्तुतः वह सीधा तीर की तरह काल के मुख में जा रहा है।

अर्जुन ने पश्चाताप किया कि प्रभो! मुझसे भयंकर भूल हुई। अब कोई उपाय है? श्रीकृष्ण ने कहा- पार्थ! समय तो बहुत बीत गया। अब अभिमन्यु जीवित तो नहीं हो सकता। हाँ, तुम उसे देख सकते हो। अर्जुन ने कहा- प्रभो! दिखा ही दीजिए।

भगवान् ने रथ एक दिशा में घुमा दिया। एक दिव्य वायुमण्डल से रथ गुजरा। एक भव्य सिंहासन पर बैठा अभिमन्यु दिखायी पड़ा। उसे देखते ही अर्जुन पुनः भूल कर बैठा। भगवान् से अनुमति या आज्ञा भी न ली, अभिमन्यु की ओर दौड़ पड़ा। भगवान् मुस्कराने लगे। अर्जुन भगवान् का प्रेमी अवश्य था किन्तु पुत्रमोह उससे भी अधिक था। वह 'बेटा अभिमन्यु! बेटा अभिमन्यु!' कहकर पुकारने लगा। अभिमन्यु ने देखा, बोला- कौन हो तुम ? अर्जुन ने देखा, यह तो अपने पिता को भी नहीं पहचान रहा है। प्रतीत होता है कि सात-सात महारथियों द्वारा किये गये भीषण प्रहार से इसकी स्मृति लुप्त हो गयी है। यदि इसकी माँ का नाम लूँ तो यह मुझे निश्चित पहचान लेगा।

अर्जुन ने कहा- सुभद्रापुत्र अभिमन्यु बेटे! पहचान भी नहीं रहे हो ? अभिमन्यु ने कहा- देखिये, मैं न सुभद्रापुत्र हूँ न ही तुम्हारा बेटा! सात बार मैं पिता और तुम पुत्र हुए। केवल एक बार तुम पिता और मैं पुत्र हुआ। आठ जन्मों से ये बदले चले आ रहे थे और न जाने कब तक चलते। इन भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा है कि मैं अपना स्वरूप पा गया हूँ। तुम भी इन्हीं की आराधना करो नहीं तो हजारों जन्मों तक 'हाय बेटा! हाय बेटा!' कहकर बिलखते ही रहोगे। अर्जुन को वास्तविकता का बोध हो गया। उसे ग्लानि होने लगी कि जिस पुत्र के लिये मैं चिता पर चढ़ गया वह भी आठ जन्मों का शत्रु ही निकला, जो अपना बदला पूरा कर रहा था। मोह का अन्तिम केन्द्र पुत्रमोह ही होता है। उसका मोह टूट गया। उस दिन से अर्जुन सब ओर से चित्त समेटकर भजन में लग गया। शयन करने पर भी उसके श्वास से 'ओम्-ओम्' की ध्वनि प्रवाहित होती थी। यही गुण हनुमान जी में भी था। मूर्च्छित होने पर भी उनके मुख से 'राम-राम' की ध्वनि निकल रही थी। उनके रोम-रोम में राम, हृदय में राम सदैव विराजमान थे। सृष्टि में जितने भी सम्बन्ध-सूत्र माता, पिता, पत्नी, पुत्र इत्यादि के रूप में है, बदले पर आधारित हैं। सृष्टि बदलों पर आधारित

है। सृष्टि बदलों पर अथवा दूसरे शब्दों में पुनर्जन्म पर टिकी हुई है। आत्मायें जन्म-जन्म से एक-दूसरे का पीछा कर रही हैं।

साधनकाल में हमें भी ऐसे अनेक अनुभव आये। गुरु महाराज की शरण आने के एक-डेढ़ वर्ष पश्चात् हम बीमार पड़ गये। महाराज जी की धूने के पास, भीतर कोठरी के दरवाजे पर कुछ भीतरी भाग में हम लेटे थे। हम सोये नहीं थे, जग ही रहे थे, आँखें खुली थीं। हमारे सिर के नीचे तकिया के स्थान पर चावल की ढेरी थी। हमारे पीछे अगल-बगल हमारे परिवार तथा मित्रों में से लगभग पचास व्यक्ति खड़े थे। उन सबके हाथ हमारे सिर पर एक साथ पड़े। सिर फूट गया। उन सबने सिर समेत चावल के दानों को आपस में बाँट लिया और चले गये। हमारी स्वाँस बन्द हो गयी। हमें बड़ा कष्ट हुआ। हमारे मन में विचार आया कि देखें सिर है भी या नहीं! हाथ ऊपर उठाकर स्पर्श किया, सिर ज्यों-का-त्यों था। उठकर बैठ गये। हमें भयंकर बुखार था। हमने सोचा कि बुखार के आवेग में ऐसा स्वप्न दिखायी पड़ गया होगा। हम पुनः लेट गये। मन में भय था कि कहीं वे लोग पुनः न आ जायँ।

तब तक वही लोग पुनः दिखायी पड़े। हमारा सिर पुनः ऊपर उठने लगा जैसे स्ट्रेच मशीन या क्रेन से कोई उठा दे। चावल-जैसा सफेद-सफेद पदार्थ की पुनः ढेरी लगने लगी। पचासों हाथ एक साथ सिर पर गिरे और सिर गर्दन सहित गायब हो गया। श्वास बन्द हो गयी। हम फिर भी देख और विचार कर रहे थे। सिर काटकर आपस में बाँट लेनेवालों को हम पहचान भी रहे हैं- कहीं चाचाजी खड़े हैं तो कहीं कोई! सब चले गये। हमने दूसरी बार हाथ ऊपर उठाकर सिर को टटोला तो चेतना पुनः लौट आयी।

हमारा धैर्य जाता रहा। हम वहाँ से उठकर महाराजजी के पास चले गये, प्रणाम किया और कहा- महाराज जी! हमें ऐसा दिखायी पड़ता है कि सिर कट गया और घरवाले ही इसे काट-बाँट रहे हैं। श्वास रुक जाती है। ऐसा दो बार हो गया।

महाराज बोले- बेटा! उन लोगों का कर्ज शेष है। ऋण था तभी तो तुम्हें जन्म लेना पड़ा। ऋण शेष था तभी तो तुम्हें बुखार आया। यही लोग कष्ट दे-देकर तुम्हारे शरीर से अपना-अपना ऋण वसूल रहे हैं। भजन बढ़ा, वे ऋण भी चुकता हो जायेंगे और बुखार भी नहीं आयेगा। हमने कहा- महाराज! किसी बार श्वास रुकी-की-रुकी ही न रह जाय। महाराज जी बोले- नहीं रे! वे बदला ले रहे हैं। अब कर प्रणाम धूनी में और खा विभूति! ज्योंही प्रणाम कर विभूति खाया, महाराज जी ने हमें एक झापड़ मारकर कहा, "चलो जाओ, हो गया! अब वे लोग तुम्हारा स्पर्श नहीं कर पायेंगे।" बस, पुनः ऐसा दृश्य नहीं आया। हमें भी बहुत ग्लानि हुई कि जिनके लिये हम मरते-मिटते थे, वे भी बदला लेते दिखायी पड़े।

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्बान।
ग्यानवन्त अपि सो नर, पसु बिनु पूँछ विषान।।
(रामचरित मानस, 7/78 क)

जो एक परमात्मा के भजन के बिना कल्याण चाहता है, अन्य किसी विधि से निर्वाण पद चाहता है, वह बिना सींग-पूँछ का पशु है। पशु और उसमें कोई अन्तर ही नहीं है। केवल सींग नहीं है, पूँछ नहीं है; है पक्का बैल! इससे अधिक सन्त महापुरुष कितने कठोर शब्दों का प्रयोग करते? अपने स्वजनों को वे कैसे समझाते? पुनः वे कहते हैं-

बारि मथे घृत होय बरू, सिकता ते बरू तेल।
बिन हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धान्त अपेल।।
(मानस, 7/122 क)

बालू पेरने से भले ही तेल निकल आये, पानी मथने से भले भी घी निकल आये, यह असम्भव कदाचित् सम्भव हो भी जाय लेकिन **'बिन हरि भजन न भव तरिअ'**- एकमात्र हरि के भजन के बिना कोई भव पार नहीं हो सकता- यह अकाट्य सिद्धान्त है। भव माने जन्म! यह पुनर्जन्मवाद नहीं है तो है क्या? यह एक ईश्वरवाद नहीं है तो है क्या? तौहीद और किसे कहते हैं?

आप सबके आ़दिशास्त्र गीता में भगवान् कहते हैं- विधाता और उससे उत्पन्न सृष्टि नश्वर है। अर्जुन! काल को पाकर ब्रह्मा भी अपने लोक अर्थात् शरीर सहित शान्त हो जाता है। दिति-अदिति की संतानें दानव, देवता, मानव इत्यादि सभी पुनरावर्ती स्वभाव वाले हैं; किन्तु अर्जुन! मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। वह सदा रहनेवाला जीवन, सदा रहनेवाला धाम और सदा रहनेवाली शान्ति प्राप्त कर लेता है। अस्तु, भजन एक परमात्मा का ही करना चाहिए- यह गीता का संदेश है।

गीता के अनुसार उस परमात्मा को विदित करने की एक नियत विधि है, एक निश्चित साधना-पद्धति है, उसका नाम है योगविधि, जिसे श्रीकृष्ण ने गीता में यज्ञ कहा है। इस यज्ञ में अग्नि नहीं जलायी जाती; तिल, जौ, घी, दसांग नहीं जलाया जाता। इसमें साधना का चित्रण है, जैसे- श्वास-प्रश्वास का हवन करना, इन्द्रियों के बहिर्मुखी प्रवाह को **'संयमाग्निषु जुह्वति'**- संयमित करना। ज्ञानाग्नि, योगाग्नि, ब्रह्माग्नि, इन्द्रियाग्नि इत्यादि कई अग्नियों का उल्लेख गीता के अध्याय चार में है। इन सबका आशय एक है कि सब ओर से चित्तवृत्ति समेट कर एक इष्ट की ओर उन्मुख करना और एक चिन्तन में धारावाही श्वास-प्रश्वास के यजन में लगना।

प्राणों का व्यापार जब शान्त हो जाय अर्थात् अन्तःकरण में हलन-चलन, संकल्प करना, बार-बार विचार करना, कोई निर्णय करना इत्यादि क्रियाएँ जब शान्तवाहिता हो जाती हैं तब प्राणों के व्यापार पर विराम लग जाता है। इसी अवस्था को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम के सधते ही तत्क्षण यज्ञ का परिणाम निकल आता है। जब मन (अन्तःकरण) में कोई विक्षोभ या संकल्प है ही नहीं, यही मन की निरोधावस्था है; क्योंकि संकल्प का ही दूसरा नाम मन है। जब संकल्प-विकल्प शान्त हो गये तो इसका अर्थ है कि मन ने स्थायित्व ले लिया। मन के विलीन होते ही यज्ञ का परिणाम सनातन ब्रह्म में स्थिति और अमृत का भोजन मिल जाता है।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।। (गीता, 4/31)

मन की निरोधावस्था में, जिस क्षण निरोध, उसी क्षण की पूर्तिकाल में यज्ञ जो अवशेष छोड़ता है (वह चार बोरा गेहूँ या दस टीना घी नहीं है।) वह है अमृत- मृत्यु से परे जो अमृत तत्त्व आत्मा है उसका प्रत्यक्ष दर्शन और जानकारी। साक्षात्कार से मिलनेवाली इसी जानकारी का नाम ज्ञान है। उस ज्ञानामृत का पान करनेवाला योगी सनातन ब्रह्म में स्थिति, सदा रहनेवाला जीवन, शाश्वत शान्ति और परमधाम पा जाता है। इसलिये योगविधि ही यज्ञ है और इस यज्ञ को चरितार्थ करना कर्म है। कर्म का अर्थ है आराधना। गीता में नियत कर्म का आशय है चिन्तन।

इस आराधनात्मक कर्म के लिये प्रोत्साहन देते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि एक ही कर्म-पथ का दो दृष्टियों से पालन किया जाता है- ज्ञानयोग जिसे सांख्ययोग भी कहते हैं और कर्मयोग जिसे निष्काम कर्मयोग अर्थात् भक्तियोग भी कहा जाता है। ज्ञानयोगी अपने बलाबल का निर्णय लेकर चलते हैं कि इस स्थिति में हूँ, आगे वह स्तर मिलेगा। अन्त में मैं प्रभु का स्वरूप पाऊँगा जो मेरा ही स्वरूप होगा। इस प्रकार की जानकारी रखते हुए स्वावलम्बी होकर जो चलते हैं, वे ज्ञानमार्गी हैं। इनके मार्ग में दो फल हैं-

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।।

(गीता, 2/37)

अर्जुन! इस युद्ध में यदि तुम विजयी हुए तो महामहिम स्थिति प्राप्त कर लोगे और हारोगे तो देवत्व अर्थात् दैवी सम्पद् को तो धारण कर ही लोगे। तुम्हारे दोनों हाथों में लड्डू होंगे। इस प्रकार ज्ञानयोग के दो फल बताये।

इसके पश्चात् भगवान् ने बताया कि इसी साधना को निष्काम कर्मयोगवाली बुद्धि से सुन, जिस बुद्धि से युक्त होकर तू कर्मों के बन्धन का भली प्रकार नाश कर सकेगा, कर्म-बन्धन से छुटकारा पा जायेगा, यह

निष्काम कर्म की पहली उपलब्धि है। इसका दूसरा फल भगवान् ने बताया कि-

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।।

(गीता, 2/40)

अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का नाश नहीं है। इस साधन पर दो कदम चलते बन गया, अगले जन्म में जहाँ साधना छूटी थी, वहीं से आगे बढ़ जायेगी। विषयों में आकण्ठ डूबा होने पर भी वह पिछले जन्म में जहाँ साधना छूटी थी, अनायास उस बुद्धि-संयोग को प्राप्त कर लेगा, साधना आरम्भ हो जायेगी और कुछेक जन्मों के अन्तराल से वह क्रमशः वहीं पहुँच जायेगा जिसका नाम परमगति है। इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का नाश नहीं है, दूसरा फल बताया। उन्होंने अग्रेतर तीसरा फल बताया कि इस निष्काम कर्मयोग में सीमित फलरूपी दोष भी नहीं है कि स्वर्ग के प्रलोभन या ऋद्धियों-सिद्धियों में उलझाकर आपके अर्जित अभ्यास को शून्य कर दे। इसीलिए इस कर्मरूपी धर्म का स्वल्प अभ्यास भी जन्म-मरण के महाभय से उद्धार करनेवाला होता है। इसका थोड़ा भी अभ्यास पार लग गया, भले ही मोक्ष आज न हो, किन्तु मोक्ष का आरक्षण भली प्रकार हो गया। माया में इतनी क्षमता नहीं है कि आपकी साधना को नष्ट कर दे। माया केवल आवरण डालती है, साधना का उन्मूलन नहीं कर सकती। अन्त में भगवान् ने बताया कि कुछ भी कर डालना कर्म नहीं है-

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।। (गीता, 2/41)

अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में एक ही बुद्धि है, एक निर्धारित क्रिया है। कुछ भी कर डालना कर्म नहीं है। आगे स्पष्ट किया गया कि **'यज्ञार्थात्कर्मणो....'**- यज्ञ को कार्यरूप देना कर्म है। प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या जो बहुत-सी क्रियायें करते हैं, भजन नहीं करते? भगवान् ने कहा- अर्जुन! नहीं, वे भजन नहीं करते। अविवेकियों की बुद्धि अनन्त

शाखाओंवाली होती है इसलिये वे अनन्त क्रियाओं को रच लेते हैं; जैसी कल्पना की तरंग उठी, वैसा रच लेते हैं। वे स्वर्ग को ही सर्वोपरि माननेवाले (कुछ ग्रन्थों में स्वर्ग और नरक का ही चित्रण है) वेद के उन वाक्यों में अनुरक्त रहते हैं जिनमें कर्मफलों की प्रशंसा है। उसे वे दिखावटी शोभायुक्त वाणी में व्यक्त भी करते हैं। उनके वाणी की छाप जिन-जिन के चित्त पर पड़ जाती है उनकी भी बुद्धि नष्ट हो जाती है, न कि वे कुछ पाते हैं।

अर्जुन! वे लोग जन्म और मृत्यु, पुनः जन्म, पुनः मृत्युरूप अनन्त फल को प्राप्त होते हैं। अर्थात् अन्य-अन्य तरीकों से भजनेवाले वे कभी भी कल्याण नहीं पाते, आवागमन के चक्कर में भटकते रहते हैं।

सारांशतः निष्काम कर्मयोग के प्रभाव से तुम आवागमन से भली प्रकार मुक्त हो जाओगे। इस प्रकरण में आवागमन है, मुक्ति है, जन्म-मृत्युरूपी अनन्त फल है। इसी का नाम पुनर्जन्म है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा- अर्जुन! आदि में मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा, सूर्य ने महाराजा मनु से कहा। मनु से जायमान होने से हम-आप मनुज कहलाते हैं। मनु के औरस पुत्रों की वंश-परम्परा में सृष्टि के सभी मानव हैं। पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध, दक्षिणी गोलार्द्ध, सर्वत्र मनु की ही सन्तति हैं। वे आदिपुरुष थे इसीलिये आदम और उन्हीं से जायमान होने से आदमी कहलाते हैं। यह आदि शब्द संस्कृत का है- जैसे- 'त्वमादिदेवः.....' इत्यादि। शीतप्रधान देशों में मनुष्यों का रंग गोरा हो गया, उष्ण कटिबन्धीय निवासी मनु-पुत्रों का काला तो भारत जैसे समशीतोष्ण देशों के निवासियों का रंग गेहुँआ हो गया। यह तो जलवायु की देन है न कि भिन्न-भिन्न प्रजातियाँ। रेतीले प्रदेश में मेढकों का रंग पीला, घासवाले मेढक का रंग हरा हो जाता है। इस प्रकार सभी मानव मनु की सन्तान परम्परा में हैं।

सूर्य ने वही अविनाशी योग मनु से कहा, उनसे इक्ष्वाकु और क्रमशः राजर्षियों ने जाना। उस महत्वपूर्ण काल से यह अविनाशी योग इसी पृथ्वी

में लुप्त हो गया। योग अविनाशी है, उसका विनाश तो होता नहीं, मनुष्यों के चित्त से विस्मृत हो चला। वही पुरातन योग अर्जुन! मैं तेरे प्रति कहने जा रहा हूँ।

अर्जुन चौंका। वह बोला- प्रभो! आपका जन्म तो अब हुआ है जबकि सूर्य का जन्म बहुत पहले हुआ था। आदि में आपने यही ज्ञान सूर्य से कहा- मैं कैसे विश्वास कर लूँ? इस पर भगवान् ने कहा-

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।। (गीता, 4/5)

परंतप अर्जुन! मेरे तेरे बहुत से जन्म बीत चुके। उन सबको तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। अस्तु, पुनर्जन्म के रहस्य को सब नहीं जानते हैं लेकिन योगेश्वर से कुछ भी छिपा नहीं रहता और जिसे चाहते हैं, उसे इसका बोध भी करा देते हैं। पुनर्जन्म अवश्यंभावी है।

कुरुक्षेत्र के रणांगन में सैन्य-निरीक्षण से विचलित अर्जुन बाण सहित धनुष त्यागकर रथ के पिछले भाग में चेतनाशून्य-सा गिर पड़ा। वह बोल पड़ा- गोविन्द! मैं ऐसा युद्ध नहीं करूँगा। इससे तो सनातन धर्म का लोप हो जायेगा। **'कुलधर्माः सनातनाः', 'जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः'**- जातिधर्म, कुलधर्म- ये शाश्वत धर्म हैं। इनका लोप हो जायेगा। उसने पाँच-छः प्रश्न कर डाले। पिण्डोदक क्रिया, वर्णसंकर, और पाप-पुण्य! भगवान् ने कहा- तुझे यह अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया। किसी वस्तु के साथ सनातन लिख देने से क्या वह सनातन हो जाती है? न यह कीर्ति बढ़ानेवाला, न कल्याण करनेवाला, न ही वरिष्ठ महापुरुषों ने जिसका भूलकर भी आचरण किया, **'अनार्यजुष्टम्'**- यह अनार्यों का आचरण तूने कहाँ से सीख लिया?

अर्जुन किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। वह आजीवन जिसका अनुयायी बना रहा, वह घोर अज्ञान निकला। उसने भगवान् को सादर प्रणाम किया, शिष्यभाव से समर्पण किया और कहा- केशव! यदि यह सब अज्ञान है तो

इसके अतिरिक्त मैं कुछ भी नहीं जानता। भगवन्! आप ही बताइये कि सत्य क्या है जिससे मैं परमश्रेय को प्राप्त हो जाऊँ? इस पर भगवान् बोले-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।। (गीता, 2/16)

अर्जुन! सत्य वस्तु का तीनों काल में अभाव नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता और असत्य का अस्तित्व नहीं है, उसे रोका नहीं जा सकता। भला क्या है वह सत्य? अर्जुन! यह आत्मा ही सत्य है, शाश्वत है, अमृततत्त्व है, काल से परे अकाल पुरुष, अपरिवर्तनशील और सनातन है। आप कौन हैं? सनातनधर्मी! सनातन कौन है? आत्मा। अतः यदि आप आत्मा की जागृति के प्रति यत्नशील नहीं हैं तो आप सनातन-धर्मी भी नहीं हैं। आप हैं सत्य के अन्वेषी। सत्य है केवल आत्मा। यदि आप आत्मा के प्रति श्रद्धावान नहीं है तो कैसे सत्य के पुजारी?

यह आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म इत्यादि एक ही परमात्मा के विविध दृष्टिकोण से नाम हैं। यह सबके हृदय अर्थात् अन्तःकरण में सदा निवास करता है इसलिये आत्मा कहलाता है। सबमें रहते हुए सबसे पृथक् रहता है। परे है इसलिये परमात्मा, सारी विभूतियों से युक्त है अतः विभु, सबका भरण-पोषण करता है इसलिये प्रभु, सर्वत्र व्याप्त है, बृहद् है इसलिए ब्रह्म। आप जीवनपर्यन्त इसी तरह से नामकरण करते रहें, उस परमसत्ता का सम्पूर्ण नाम एक भी नहीं। ये समस्त नाम विविध एंगल (दृष्टिकोण) से परमात्मा की विभूतियों के चित्रण मात्र हैं।

इस प्रकार आत्मा ही सनातन है और भूतादिकों के सम्पूर्ण शरीर नाशवान है, इसलिये तू युद्ध कर। अर्जुन ने कहा था कि वह युद्ध नहीं करेगा। इसके लिये सम्पूर्ण गीता में एक ही कारण बताया गया कि शरीर नाशवान है, इसलिये युद्ध कर। प्रश्न उठता है कि क्या शरीर मारने से मर जायेगा? क्या पाण्डव पक्ष के शरीर अविनाशी थे? आधे सम्बन्धी एक पक्ष में तो आधे दूसरे पक्ष में- सब शरीरधारी ही तो थे। जहाँ भी शरीर दिखायी पड़े,

चलायें बाण! क्योंकि शरीर नाशवान ही तो है। इस आदेश से यह तो स्पष्ट नहीं था कि पाण्डव पक्ष को न मारें। शरीर ही तो थे दोनों ओर।

मारने से शरीर मरता भी नहीं। गीता में भगवान् का कथन है-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।। (गीता, 2/22)

जीर्ण-शीर्ण वस्त्र को त्यागकर मनुष्य जिस प्रकार नवीन वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी प्रकार भूतादिकों का स्वामी, प्राणिमात्र का स्वामी यह आत्मा जीर्ण शरीररूपी वस्त्र को त्यागकर दूसरे नवीन शरीररूपी वस्त्र को धारण कर लेता है। इधर शरीररूपी वस्त्र छूटा, उधर शरीर तैयार! वृद्धावस्था का झुर्रियों वाला अशक्त शरीर छूटा तो बच्चों का फुदकता हुआ नया शरीर मिलना ही है। जीर्ण-शीर्ण काया का परिवर्तन होना है, तो अबोध शिशु क्यों मर जाते हैं ? उस शरीर को तो अभी विकसित होना चाहिये था ? वास्तव में शरीर की जीवनी शक्ति, जिस पर यह शरीर टिका हुआ है, वह है संस्कार। संस्कार दो दिन का है तो उतने ही समय में शरीर जीर्ण हो चुका।

पूज्य गुरु महाराज ने अपने जीवन का एक संस्मरण बताया था। गृहत्याग के पश्चात् महाराजश्री अयोध्या के उत्तर मनकापुर के मधवापुर ग्राम के समीप निराधार विचरण कर रहे थे। भगवान् ने आदेश दिया कि वहाँ चतुर्मास्य करें। सन्तजन वर्षा के चार महीने विचरण न कर एक स्थान पर भजन कर व्यतीत करते हैं, इसे चतुर्मासा कहते हैं। महाराज जी वहाँ एक विल्व वृक्ष के नीचे बैठकर भजन में प्रवृत्त हो गये।

सायंकाल महाराज जी जंगल के किनारे की सड़क से चलित ध्यान की मुद्रा में टहलने जाया करते थे। सड़क के पार्श्व में एक सन्तसेवी ठाकुर राम पदारथ सिंह का घर था। उस घर के समीप से निकलने पर

महाराजजी को प्रतीत होता मानो वह उनका ही घर है। इतना आकर्षण होता, मन करता था कि तुरन्त आँगन में पहुँच जायँ। कितने शीघ्र घर में प्रवेश करें। महाराज विचार करते कि बात क्या है? वे शीघ्रता से आगे बढ़ जाते थे। उस वायुमण्डल से बाहर निकल जाने पर वे संकल्प समाप्त हो जाते थे।

दो-चार दिन पश्चात् महाराज जी पुनः उधर से निकले। ज्योंही वह घर समीप आया, पुनः वही खिंचाव कि शीघ्र घर में चलें, इतना लगाव जैसे अपना ही घर हो। महाराज जी ने भगवान् से पूछा- प्रभो! उस घर के बगल से निकलते हैं तो इतना खिंचाव क्यों होता है? चिन्तन में जा रहे होते हैं तो कदम अनायास, बलात् उस घर की ओर क्यों घूम जाते हैं? भगवान् ने बताया- तुम्हारा पिछला जन्म इसी घर में हुआ था। यहाँ तुम ढाई महीने जीवित रहे हो, उतना ही संस्कार था, पुनः तुम्हारा शरीर छूट गया। तुम्हें जन्म देनेवाली माँ अभी जीवित है।

प्रातः गाँव के भाविक श्रद्धालु महाराज जी के दर्शन-सत्संगहेतु आने लगे। महाराजजी ने उनसे चर्चा की- क्यों, इस घर में पहले कोई लड़का पैदा हुआ था जो केवल दो-ढाई महीने ही जीवित रहा और मर गया? बुजुर्गों से यह प्रसंग सुनकर उस घर के सभी सदस्य चले आये। वयोवृद्ध माता भी आ गयीं। वह रोते हुए बोलीं- महाराज! वह इतना सुन्दर, इतना चंचल और इतना होनहार बालक था! दैव ने उसे उठा लिया। उसके बाद कोई सन्तान भी नहीं हुई। वह उस शिशु की प्रशंसा किये जा रही थीं। गाँव-परिवार के सभी लोग उदास बैठे थे, किन्तु महाराज जी ने उन्हें यह नहीं बताया कि जिसने जन्म लिया था, वह स्वयं थे। ऐसा कह देने पर एक नयी विपत्ति का सामना करना पड़ता, एक नयी रिश्तेदारी जो जुड़ जाती। महाराजजी का समाधान हो गया कि कुछ संस्कार थे इसलिये उतने दिनों के लिये वहाँ रहना पड़ा। इससे प्रेरणा पाकर महाराज जी दृढ़तापूर्वक भजन में लग गये। न जाने कहाँ-कहाँ से भटककर यह जीवात्मा शरीरों

की यात्रा करती आ रही है। इस शरीर ने न जाने कितनी माताओं को रुलाया है, अतः वह साधन-भजन कर लिया जाय जिससे पुनः शरीर न धारण करना पड़े।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। (गीता, 15/7)

अर्जुन! इस देह में जीवात्मा मेरा सनातन अंश है। यह उतना ही पावन है जितना स्वयं भगवान्! मनसहित इन्द्रियों के क्रियाकलापों की छाप लेकर आत्मा एक शरीर त्यागती है और उसी क्षण नवीन शरीर धारण कर लेती है। बीच में नरक-जैसा कोई गड्ढा नहीं है जहाँ पूर्वज पड़े हों और भविष्य में आनेवाली संतति के सिर पर उनके भोजन-पानी का दायित्व हो। अर्जुन ने यही तो कहा था कि पिण्डोदक क्रिया लुप्त हो जायेगी; किन्तु भगवान् ने कहा- यह अज्ञान तुझे कहाँ से उत्पन्न हो गया। जीवात्मा एक शरीर को त्यागकर दूसरा शरीर धारण कर लेती है। उस नवीन शरीर में मनसहित इन पाँचों इन्द्रियों के माध्यम से जीवात्मा पुनः विषयों में प्रवृत्त हो जाती है। इसका रहस्योद्‌घाटन करते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं-

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।
(गीता, 15/10)

शरीर छोड़कर जाती हुई को, पुनः नवीन शरीर को धारण करती हुई को और पुनः विषयों में प्रवृत्त हुई जीवात्मा को **'विमूढा नानुपश्यन्ति'**- मूढ़लोग नहीं जानते; **'पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः'**- ज्ञानरूपी नेत्रवाले भली प्रकार जानते हैं कि कहाँ क्या बदला, कहाँ क्या मिला। हमारे गुरु महाराज के पास ज्ञान-नेत्र थे इसलिये उन्हें पूर्वजन्मों के वृत्तान्त भली प्रकार दिखायी पड़ गये। सामान्य जन यह नहीं समझ सकते कि पुनर्जन्म झूठ है या सही! यह अनुभवगम्य है। कोई तर्क से गणित लगाकर, फलित ज्योतिष

इत्यादि से इसका अनुमान नहीं लगा सकता। क्षुद्र बुद्धि में इतनी क्षमता कहाँ है? मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और इन्द्रियाँ शरीर के यन्त्रमात्र हैं। ये केवल माया तक सीमित हैं- **'गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।'** इन्द्रियों और इन्द्रियों के विषयों में मन जहाँ तक उड़ान भरता है, वह सब माया है। बुद्धि निर्णय लेती है तो माया है। कितना भी सूक्ष्म निर्णय लें, मायिक क्षेत्र का ही ऊँचा-नीचा निर्णय होगा, सत्य कभी नहीं होगा। अंधकार में पड़ा व्यक्ति अटकल ही लगा सकता है। इसको **'पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः'**- ज्ञानरूपी दृष्टिवाले ही प्रत्यक्ष देखते हैं कि पहले क्या थे, अब क्या हैं और भविष्य में क्या होंगे? कितने संस्कार कट गये हैं, कितना शेष है और कब मोक्ष है? पूर्वजन्म की जानकारी योग-साधना का स्तर आते ही आप भी जान जायेंगे कि यह क्यों और कैसे होता है? भगवान् कहते हैं-

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।। (गीता, 8/5)

अन्त समय में मेरा स्मरण करते हुए जो शरीर को त्यागता है, वह मेरे अविनाशी स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, जहाँ से वह पीछे लौटकर आवागमन में नहीं आता। (इस स्तर पर आवागमन का क्रम टूटता है।) वह मेरे सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है; किन्तु अन्तिम समय में भगवान् का स्मरण नहीं हुआ, किसी अन्य का कर लिया तब क्या होगा? इस पर कहते हैं-

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।। (गीता, 8/6)

अर्जुन! जो जिस भाव का स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, प्रायः उसी योनि को प्राप्त होता है (स्पष्ट है कि नवीन शरीर धारण करने में माता-पिता के जीनों की आवश्यकता नहीं है। यह संकल्पों और स्मृति पर आधारित है।) और जो मेरा स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है,

वह मेरे सहज स्वरूप को प्राप्त होता है। तब तो बड़ा सस्ता सौदा है। हम आज से ही क्यों नाम जपें या इन्द्रियसंयम करें ? जब शरीर छूटने लगेगा, हम भगवान् का स्मरण कर लेंगे! किन्तु भगवान् कहते हैं- अर्जुन! ऐसा नहीं होता। **'सदा तद्भाव भावितः'**- वह सदैव उसी भावना से ओतप्रोत रहता है जिसका जीवन में अधिक अभ्यास किया है। मृत्यु के समय बुद्धि विकल रहती है जिससे निर्णय लेते हैं; स्मृति भ्रमित रहती है जिसके पटल पर धारण किया जाता है- ये यन्त्र बिगड़ जाते हैं। आप धारण कैसे कर लेंगे ? उस समय वही दृश्य हठात् सामने आ जाता है जिसका जीवन में अधिक आचरण किया गया है। इसलिये अर्जुन! कल तो कभी आता नहीं, तू आज से ही, अभी से, हर समय निरन्तर मेरा चिन्तन कर और युद्ध कर! तू मुझे प्राप्त होगा। (गीता, 8/7)

अब निरन्तर चिन्तन और युद्ध एक साथ कैसे संभव है ? क्या 'जय श्रीराम', 'हर हर महादेव' या 'जय कन्हैयालाल की' कहते रहें और अस्त्र-शस्त्र चलाते रहें; किन्तु अगले ही श्लोक में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने निरन्तर चिन्तन की विधि पर प्रकाश डाला कि योग-साधना, गीतोक्त साधना-पद्धति को अन्तःकरण में धारण कर, वैराग्य में स्थिर रहते हुए, एकान्त-सेवन करते हुए, सिवाय मेरे अन्य किसी विषय-वस्तु का स्मरण न करते हुए निरन्तर चिन्तन कर और युद्ध कर। आप ही विचार करें- एकान्त-देश का सेवन है, हमारे अतिरिक्त वहाँ कोई है भी नहीं, किससे युद्ध करेंगे ? वैराग्य में स्थिर रहना है। वैराग्य अर्थात् देखी-सुनी वस्तुओं में राग (लगाव) का त्याग। किसी वस्तु में आसक्ति होगी, तभी संघर्ष की संभावना है। देखा है सांसारिक वस्तुयें! सुना है स्वर्ग-बैकुण्ठ तक की महिमा! इन देखी-सुनी वस्तुओं में लगाव न होने पर कैसा युद्ध ? किसके लिये लड़ें ? योगविधि नियत कर्म को हृदय में धारण करना है। सिवाय इष्ट के अन्य किसी विषय-वस्तु का चिन्तन न करनेवाला किससे और क्यों युद्ध करेगा ? कैसा है यह युद्ध ?

वस्तुतः सब ओर से चित्त को समेटकर, वैराग्य में भली प्रकार स्थिर रहकर जब उस परमप्रभु में चित्त को लगाते हैं तो मायिक प्रवृत्तियाँ बाधा के रूप में प्रत्यक्ष ही हैं। चिन्तन में काम-क्रोध, लोभ-मोह, राग-द्वेष, मद-मत्सर इत्यादि की तरंगें उठने लगती हैं। जब भी कोई भजन करने बैठता है, वर्तमान की तो बात छोड़ें, दस-बीस वर्ष पहले भी घटित घटना की फाईल, अभिलेख मन खोलकर रख देता है। शरीर तो ध्यान में बैठा है किन्तु मन उस अतीत का चिन्तन कर रहा है, भविष्य की योजनायें बना रहा है। यह ध्यान में ही होता है अतः यह युद्ध अन्तःकरण का है। यह क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ की लड़ाई है, प्रकृति और पुरुष की लड़ाई है, जिसमें एक बार विजय हो गयी तो शाश्वत विजय है जिसके पीछे हार नहीं है। परिणाम में सदा रहनेवाली शान्ति, सदा रहनेवाला जीवन और शाश्वत धाम है अन्यथा जिसका चिन्तन किया, वही योनि **'पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम् पुनरपि जननी जठरे शयनम्।'** का क्रम चलता रहेगा। योगेश्वर श्रीकृष्ण पुनः इसी पर बल देते हैं-

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।
(गीता, 8/14)

'अनन्य' अर्थात् अन्य न, मेरे अतिरिक्त अन्य किसी का स्मरण न करते हुए जो निरन्तर मेरा इसी विधि से सुमिरण करता है, उसके लिये मैं सुलभ हूँ। आपके सुलभ होने से लाभ? इस पर योगेश्वर कहते हैं-

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।। (गीता, 8/15)

मुझे प्राप्त होकर महात्माजन दुःखों की खान और क्षणभंगुर पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते, वे भक्तजन मुझे प्राप्त होते हैं। प्रश्न स्वाभाविक है कि पुनर्जन्म की परिधि में आता कौन-कौन है? पुनर्जन्म की सीमा कहाँ तक है? इस पर कहते हैं-

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।। (गीता, 8/16)

स्वयं सृष्टि के रचयिता विधाता और उससे उत्पन्न यावन्मात्र जगत् पुनरावर्ती स्वभाववाला है। काल पाकर ब्रह्मा भी अपने लोकसमेत शान्त हो जाता है। विधाता और उससे उत्पन्न सृष्टि, दिति-अदिति की सन्तानें, देव-दानव और मानव सभी पुनरावर्ती स्वभाववाले हैं। किन्तु मुझे प्राप्त व्यक्ति का विनाश नहीं होता, पुनर्जन्म नहीं होता। वह मेरे सहज स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् भजन एक परमात्मा का, शेष सभी नश्वर, पुनरावर्ती स्वभाववाले हैं। सृष्टि बदलों पर टिकी हुई है। कहीं पिता-पुत्र बनकर, कहीं अन्य सम्बन्धों के रूप में बदले चलते ही रहते हैं।

गीता के अनुसार जीवात्मा एक शरीर को त्यागकर दूसरा शरीर धारण कर लेता है। यह शरीर छूटा तो उस शरीर में चले गये। जो व्यवस्था यहाँ विद्यमान थी, वहाँ भी है। भगवान् श्रीकृष्ण के अनुसार तामसी गुण की बहुलता में जीवनयापन करनेवाला पुरुष पशु-पक्षी इत्यादि अधम योनि पाता है। राजसी गुण के कार्यकाल में मृत्यु को प्राप्त पुरुष मनुष्य शरीर पाता है और सात्विक गुण के कार्यकाल में मृत्यु को प्राप्त पुरुष देवत्व से युक्त उन्नत योनि को पाता है। प्रत्येक दशा में वह शरीर धारण करता है।

संस्कृत शब्दकोश में भूत का अर्थ प्राणी होता है। हम-आप सभी जीवित प्राणी, भूत हैं। बीते हुए समय को भी भूत कहते हैं। किन्तु आजकल भूत बदनाम शब्द बन बैठा है। लोग समझते हैं कि मरने के बाद कोई एकान्त श्मशान में, पीपल वृक्ष में या पुराने खण्डहर में चिपका होगा और आकर गर्दन पकड़ लेगा। यह एक भ्रान्ति मात्र है। मृत शरीर को श्रृगाल, कुत्ते घसीटते ही रहते हैं, गीध, कौवे उन्हें खाते ही रहते हैं, भूत उन्हें परेशान नहीं करता; किन्तु विश्वभर का मानव भूतों के भय से ग्रस्त है। जिस घर में गीता और उसका भाष्य 'यथार्थ गीता' का पाठ होता

रहेगा, वहाँ भूत सदा के लिये समाप्त हो जायेंगे, विलुप्त हो जायेंगे; क्योंकि 'ईश्वरः सर्वभूतानां.....' का गीता भली प्रकार बोध करा देती है कि इनका कोई अस्तित्व नहीं है।

इस्लाम विचारधारा के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब को भगवान् (अल्लाह) के द्वारा सन्देश प्रसारित किया गया कि एक ईश्वर ही सत्य है। उसका साझीदार कोई नहीं। सृष्टि के आरम्भ में ही भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा- आत्मा ही सत्य है, अन्य किसी का अस्तित्व नहीं। उसके समान अन्य कोई नहीं, ब्रह्मा भी मरणधर्मा! भगवान् ही जब बोल रहे हैं तो वह एक ही बात कहेंगे। जो भी महात्मा भजन करके उस स्तर तक पहुँचेगा, एक ही जैसा निर्णय प्रभु से मिलेगा। प्रभु अपनी विभूतियों से अवगत कराते हुए उसे अपने में स्थान दे देंगे। उन महापुरुष ने यही तो बताया कि नहीं है कोई पूजनीय 'अल्लाह' के सिवा!

वह महापुरुष तो पर्दा कर गये। पीछेवाली समाज ने जैसा-जैसा पढ़ा हो, उसमें जो अर्थ ढूँढ़ा हो, यह तो वही जाने। आजकल इस प्रश्न पर लोग कहते हैं कि कुरान के अनुसार पुनर्जन्म नहीं होता; लेकिन हमारा तो विचार है कि कुरान पुनर्जन्म पर ही टिकी हुई है। मुहम्मद साहब ने जहाँ उपदेश आरम्भ किया, विरोध होने लगा। मंदिरों-मूर्तियों से जिनकी व्यवस्था चल रही थी, उन लोगों ने जमकर विरोध किया। उनसे कई लड़ाइयाँ हुईं, कभी हार तो कभी जीत! एक बार मुहम्मद साहब के पक्ष के लोग हार गये। काफी क्षति हुई। बहुत से लोग मारे गये। शाम को जब यह लोग गाँव पहुँचे तो वहाँ के बुजुर्गों ने कहा- हमने मना किया था कि इस मुहम्मद के चक्कर में मत पड़ो। यदि मान गये होते तो कबीले के इतने लोग मारे न जाते, जीवित रहते। नहीं माने तो परिणाम देखो! तब मुहम्मद साहब को एक आयत उतरी- ऐ पैगम्बर! इनसे कह दो कि वे मरे नहीं हैं जिन्दे हैं, जन्नत में ऊँचे-ऊँचे उद्योग कर रहे हैं। (सूरा 3-आले. इमरान-पारा 4, आयत 168 से 170 तक) विचार कीजिए सौ-पचास लाशें गाड़ी जा

रही हैं, बच्चे रो रहे हैं, औरतें रो रही हैं, माँ-बाप बिलख रहे हैं और वे मरे नहीं, जन्नत में ऊँचे-ऊँचे उद्योग कर रहे हैं। करते होंगे उद्योग! वहाँ के उद्योग की कुछ सामग्री इस परिवार को भी मिलेगी क्या? मरनेवालों का एक शरीर यहाँ गाड़ा जा रहा है और एक शरीर वहाँ उद्योग कर रहा है! और क्या होता है पुनर्जन्म!

इस्लाम विचारधारा में पुनर्जन्म भली प्रकार है। कुरआन सुरेह अलवकर 2/28 में है- ''तुम किस प्रकार परमात्मा का इनकार करते हो जबकि तुम निर्जीव थे तो उसने तुमको जीवन प्रदान किया, फिर वह तुमको मृत्यु देगा, फिर पुनः जीवित करेगा, फिर पुनः उसी की ओर तुम लौटाये जाओगे।'' सूरए नूह, 71/17-18 में है- ''और परमात्मा ने तुमको धरती से वनस्पति के रूप में उगाया, फिर वह तुमको इसी धरती में पुनः ले जायेगा तथा इसी में तुम्हारी फिर से पुनरावृत्ति करेगा तथा इसी से तुमको फिर निकालेगा।'' सूरए ताहा 20/55 में है- ''इसी मिट्टी से हमने तुमको उत्पन्न किया। इसी मिट्टी में हम तुम्हारी पुनरावृत्ति करेंगे तथा इसी से तुमको फिर निकालेंगे।'' सूरए वाकेआ 56/58-62 में देखें- ''कभी तुमने विचार किया? यह जो वीर्य तुम टपकाते हो, उससे तुम पैदा करते हो अथवा उसके पैदा करने वाले हम हैं? हमने तुम्हारे मध्य मृत्यु को बाँटा है तथा हमारी शक्ति से यह बाहर नहीं है कि हम तुम्हारे रूप (योनि) को बदल दें तथा किसी ऐसे रूप में तुम्हें पैदा कर दें जिसको तुम नहीं जानते। अपने पहले जन्म को तुम जानते ही हो, फिर क्यों शिक्षा ग्रहण नहीं करते?''

सूततुल हज्जि 22/103 में है- ''ऐ लोगो! अपने परवरदिगार से डरो! कयामत का भूचाल बेशक एक भयानक चीज है। जिस दिन यह तुम्हारे सामने आ मौजूद होगी, तमाम दूध पिलानेवाली औरतें अपने दूधपीते को भूल जायेंगी और हर गर्भवती अपना गर्भ गिरने से रोक न सकेगी और लोग मदहोश दिखायी देंगे। वह मदहोश नहीं, बल्कि अल्लाह का सख्त अजाब हैं। और लोगों में कुछ ऐसे भी हैं जो बेजाने अल्लाह में झगड़ते

और शैतान सरकस के पीछे हो जाते हैं जिसके बारे में लिखा है कि जो कोई उसका दोस्त बनेगा, उसे वह बहकायेगा और दोजख के अजाब में ले जायेगा। लोगो! अगर तुमको जी उठने में शक है तो हमने तुमको मिट्टी से, फिर बूँद से, फिर खून के लोथड़ों से, बोटी से पैदा किया जिसकी बनावट अधूरी भी है, पूरी भी होती है। जाहिर करें और पेट में हम जिसको चाहते हैं एक नियत समय तक ठहराये रखते हैं और फिर बच्चे की शकल में निकालते हैं कि तुम अपनी जवानी को पहुँचो। और कोई-कोई तुममें से सबसे ज्यादा निकम्मी उम्र की तरफ लौटाकर लाया जाता है कि जानकारी के बाद भी कुछ न समझे। और तू जमीन को खुश्क देखता है, फिर जब हम उस पर पानी बरसाते हैं तो वह लहलहाने और उभरने लगती है और भाँति-भाँति रौनक की चीजें उगने लगती हैं। यह दलील इसलिये है कि अल्लाह से ही हकीकत ही है और मुर्दों को जिलाता है और वह चीज पर कादिर है और यह कि वह घड़ी अवश्य आती है। उसमें किसी तरह का शक नहीं और जो लोग कब्रों में हैं, अल्लाह उनको जिला उठायेगा और लोगों में कोई ऐसा भी है जो अल्लाह के बारे में झगड़ते हैं हालाँकि न उनके पास ज्ञान है, न सूझ है, न कोई रोशन किताब है। और घमण्ड के साथ ऐंठते हैं कि अल्लाह की राह से बहकावें। ऐसों की संसार में जिल्लत है और कयामत के दिन हम उनको जलने की सजा चखायेंगे। वह उनका बदला है कि जो तूने अपने हाथों पहले कमाकर भेज रखा है, वर्ना अल्लाह अपने बन्दों पर अन्याय नहीं करता।

आग में सिकुड़ते-सिकुड़ते उनका चमड़ा झुलस जायेगा तब अल्लाह उन्हें आग से निकालकर बाहर दूसरा चमड़ा पहनाकर पुनः उसी आग में डाल देगा।

चमड़ा सिकुड़ गया तो पुनः निकाला और आग में डाला! और क्या होता है पुनर्जन्म ? भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि पुराना वस्त्र फेंका, नया पहना। इस्लाम में और स्पष्ट कहा गया कि चमड़ा सिकुड़ गया, फिर

निकला और नवीन चमड़ा पहनाकर दोजख की उसी आग में फेंक दिया। यही तो है '**पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम् पुनरपि जननी जठरे शयनम्।**' प्रकृति की ज्वाला में, गर्भवास की यातना में बार-बार जाना ही अग्नि में झोंकना है। नेकी-बदी के अनुसार फल मिलना ही जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों का बन्धन है। अल्लाह भी अपनी इच्छा से किसी को जन्नत और दोजख नहीं देता। उनके पास इन सबका हिसाब है जिसके अनुसार वह पुरस्कार या दण्ड देता है। अस्तु, इस्लाम में पुनर्जन्म भली प्रकार है; लेकिन शास्त्र कोई विरला महापुरुष ही जानता है और उसे उनके संरक्षण में कोई विरला अधिकारी ही पढ़ पाता है। शेष सब पढ़ते हैं और जैसा समझ में आया उतना ही सच मानते हैं; लेकिन सम्पूर्ण सत्य तो कोई महापुरुष ही जानता है।

यही कारण है कि समाज के प्रायः सभी विचारधाराओं में भूत-प्रेत-खवीस और जिन्नों का क्रम लगा ही रहता है। जब कुछ मुर्दों को कयामत में उठकर खड़ा होना है तो दस दिन पहले दफनाया हुआ मुर्दा आज किसी को कैसे परेशान कर रहा है? किसी को सिरदर्द हुआ तो कहेंगे खबीस पकड़ लिया। उस शरीर को कयामत से पहले तो खड़ा ही नहीं होना चाहिये था। पकड़ कैसे लिया? रोज ही खवीस झाड़े-फूँके जा रहे हैं और रोज ही किसी-न-किसी को लगते जा रहे हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है। कयामत एक प्रश्न है जिसकी चर्चा पुनः कभी की जायेगी।

नेकी और बदी! जिसने जैसी करनी किया उसके अनुसार जन्नत (स्वर्ग) या दोज़ख (नरक) में भेजा जायेगा। जन्नत में मिलेंगे मीठे जल के झरने, फलदार वृक्ष, मनपसन्द मेवे और छायादार पेड़ के नीचे अच्छे मकान। रेगिस्तान में ये दुर्लभ वस्तुयें हैं। छायादार वृक्ष बहुत कम हैं। बहुत दूर-दूर कोई-कोई वृक्ष है तो लोगों के लिये जन्नत से कम नहीं है। फल भी वहाँ कम ही होते हैं, तो फलदार वृक्ष मिल जाय। ताप ही ताप है तो छाया में निवास मिल जाय। पानी है नहीं, है भी तो खारा; अतः मीठे

पानी की नहर मिल जाय, झरनें मिल जायँ। तिब्बतवालों का जन्नत कुछ दूसरा ही है कि सूरज की खुली रोशनी में घर हो। जो लोग बर्फ से त्रस्त हैं, तापमान शून्य से भी बहुत नीचे है, उनका जन्नत ऐसा ही होगा। यह जन्नत और दोजख हमारी करनी का परिणाम है। अपने भविष्य के लेखक तो हम स्वयं हो गये किन्तु जन्म से पूर्व का लेखक कौन था कि कोई राजा-महाराजा के घर में जन्म लेता है, सोने के पालने में परवरिश होती है? बड़ा हुआ तो तीन-तीन सौ हूरें उसके मनोरंजन के लिये मिल गयीं? कई बादशाहों के पास कई-कई सौ रानियों का इतिहास है, मरने के पश्चात् हूरें जन्नत में मिलीं भी तो क्या? वह तो कम कर दी गयीं। बेचारा रोयेगा कि हमारी और बेगमें कहाँ चली गयीं?

वस्तुतः ऐसा कुछ भी नहीं है। सृष्टि अनादि है। यह सदैव थी और सदैव रहेगी। जीवन में उत्थान-पतन विगत कर्मों के लेखों से आ रहा है। आगे भी आपको करनी का फल वैसे ही भोगना है।

ईसाइयों का भी विश्वास है कि प्रभु ईशू मसीह ने भूत भगा दिया तो बीमार ठीक हो गया। उस व्यक्ति का भूत भेड़ों में चला गया। भेड़ें भागने लगीं, चाहे चौंककर ही भागी हों। ओझा इत्यादि झाड़-फूँक करनेवालों का टोटका ऐसे ही चलता है। ईसा का शरीर छूटा, तीन दिन पश्चात् वह पुनर्जीवित हो गये। कब्र में डालने के पश्चात् उसी शरीर से जीवित होना- ईसा हुए या भूत हो गये? चालीस दिनों तक अपने भक्तों के बीच में रहे और चले गये। वस्तुतः ईसा महापुरुष थे। शरीर तो महापुरुष उसी दिन त्याग देता है जिस दिन वह स्वरूप प्राप्त कर लेता है। स्वरूपप्राप्ति के पश्चात् महापुरुष के इस स्थूल शरीर की आयु जब तक है लोकहित के लिये है। इस स्तर के महापुरुष का अपने शरीर से कोई स्वार्थ-सम्बन्ध या प्रयोजन नहीं रह जाता। वे केवल लोककल्याण के लिये हैं। ऐसे महापुरुष शरीर छूटने के पश्चात् भी जब चाहें, जिसको दर्शन दे सकते हैं। ऐसे ही महात्मा ईसा भी थे। मृत्यु के पश्चात् भी उन्होंने अपने शिष्यों को दर्शन दिया।

शरीर छूटने के पश्चात् हमारे गुरु महाराज ने हमें दर्शन दिया है। उस समय हमारे मन में दुश्चिन्ता होने लगी कि घोर जंगल का आश्रम है। गुरुदेव का महाप्रयाण हो गया है। हमारे बड़े गुरुभाई, छोटे गुरुभाई एक-एक कर आश्रम से चले गये हैं। यह भयंकर डाकुओं का क्षेत्र है। आश्रमीय मर्यादा का क्या होगा? तब गुरु महाराज ने आसन पर बैठकर दर्शन दिया। वे बोले- मैं आसन पर बैठा सब देख रहा हूँ। तू काहे चिन्ता करत है। तू आपन भजन कर।'' जैसे गुरुदेव के जीवनकाल में उन्हें देखा था, महाप्रयाण के पश्चात् भी उन्हें वैसा ही पाया। अस्तु, महापुरुष शरीर छूटने के पश्चात् जिन्दा हो नहीं जाते अपितु वे जिन्दा हैं ही। वास्तविकता तो यह है कि जीवन केवल उन्हीं के पास है और सबके पास तो वस्त्र-परिवर्तन है। केवल महापुरुष के पास अनन्त जीवन है। श्रद्धा से कोई उन्हें पुकारेगा, वे अवश्य दर्शन देंगे। आज भी गुरु महाराज के दर्शन लोग समय-समय पर पाते रहते हैं। श्रद्धा से पुकारेंगे तो आप भी पा जायेंगे। गुरु महाराज कहते थे- हो! मैं कबौं न मरिहौं! सूक्ष्म स्वरूप से सदैव विद्यमान रहूँगा। जो श्रद्धा से पुकारेगा, उसका कल्याण करता रहूँगा।''

इस प्रकार पुनर्जन्म अवश्यंभावी है; लेकिन भगवान् के वरदहस्त के नीचे पहुँचने पर पुनर्जन्म नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।। (गीता, 10/3)

अर्जुन! मुझ अजन्मा अनादि सम्पूर्ण लोकों के महान् ईश्वर को जो विदित कर लेता है, वह मरणधर्मा मनुष्यों में ज्ञानवान है। वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। यह प्राप्तिवाले महापुरुषों का लक्षण है कि उनका पुनर्जन्म नहीं होता, शेष सबके लिये तो दोजख की अग्नि, स्वर्गिक ऐश्वर्य है ही। गीतोक्त साधना से चलने पर कुछ ही समय में भगवान् आपके मन की लगाम अपने हाथ में ले लेते हैं। वह

साधक को उठाने-बैठाने और चलाने लगते हैं। उनके वरदहस्त के नीचे जहाँ साधना अग्रसर हुई तो मोक्ष भले न हुआ हो, प्रकृति में कोई वज्रपात नहीं है कि साधना को नष्ट कर दे। भगवान् की संरक्षा में वह भली प्रकार सुरक्षित है।

उदाहरण के लिये महाभारत का आख्यान है। एक बार शकुनि ने कहा- दुर्योधन! पितामह भीष्म से बढ़कर योद्धा दोनों सेनाओं में कोई नहीं है किन्तु पाण्डवों को यह नहीं मारेंगे; क्योंकि पाण्डव इन्हें प्रिय हैं। ऐसा करो कि भीष्म पितामह को उकसाया जाय, जिससे वह पाण्डवों पर घातक प्रहार करें। शकुनि की मन्त्रणा से दुर्योधन सिर नीचा करके उदास-उदास भीष्म के पास गया। पितामह ने कहा- दुर्योधन! तुम्हारे उदास होने का कोई कारण नहीं है। जब तक मेरे हाथ में धनुष है तुम्हारी हार हो ही नहीं सकती। मैं प्रतिदिन दस हजार महारथियों का वध करता रहूँगा।

दुर्योधन ने कहा- यही तो दुःख है पितामह कि आप मेरे पक्ष में युद्ध कर ही नहीं रहे हैं। आप जिन दस हजार महारथियों का वध कर रहे हैं उनमें से एक भी हमारा शत्रु नहीं है। मैं तो उन्हें पहचानता भी नहीं। पता नहीं आप किसे मार रहे हैं? आप केवल समय नष्ट कर रहे हैं। मेरे विजय-अभियान में बाधा पहुँचा रहे हैं। हमारे शत्रु केवल पाँच पाण्डव हैं। हो सके तो आप इनमें से एक को मार डालिये अन्यथा धनुष-बाण रख दीजिए। सेनापति का पद कर्ण को दे दीजिए।

भीष्म पितामह बिगड़ खड़े हुए, बोले- मूर्ख! मेरे समकक्ष यह सूतपुत्र अर्धरथी और सेनापति! असम्भव! यद्यपि मैं पूरी शक्ति से युद्ध कर रहा हूँ फिर भी तुमने आज मेरा बहुत अपमान किया है। पाण्डव अवध्य हैं। वे भगवान् के वरदहस्त के नीचे हैं। उन्हें कोई मार नहीं सकता। मारे जाओगे तुमलोग! विजय होगी पाण्डवों की; किन्तु आज तुमने लांछन बहुत लगाया। जाओ, कल सृष्टि में या तो अर्जुन नहीं रहेगा या भीष्म नहीं रहेगा।

पितामह भीष्म ने प्रतिज्ञा कर लिया। शकुनि बहुत प्रसन्न हुआ। वह बोला- वत्स दुर्योधन! काम बन गया। अर्जुन यदि मारा जाता है तो शेष पाण्डवों में रखा ही क्या है! खुशियाँ मनाओ, विजय तो हो गयी। कौरव सेना में नगाड़े बज उठे। पाण्डवों के शिविर में सन्नाटा छा गया। वे कहने लगे- पितामह को हो क्या गया? हम उनके दुश्मन कब से हो गये? उन्होंने प्रतिज्ञा कैसे कर ली?

भगवान् श्रीकृष्ण सान्त्वना देते हुए पाण्डवों के इस शिविर से उस शिविर में घूम रहे थे। लोगों ने कहा- प्रभो! पहले सान्त्वना अर्जुन को दी जाय। उसको तो नींद भी नहीं आती होगी; क्योंकि मौत का भय सबसे खतरनाक होता है। जिसके मृत्यु की प्रतिज्ञा भीष्म ने कर ली हो उसको नींद कहाँ? वह घबड़ाया होगा। पहले उसे सान्त्वना दें।

श्रीकृष्ण अर्जुन के शिविर में गये। वहाँ दूसरा ही दृश्य था। अर्जुन खर्राटे मारता हुआ गहरी नींद में सो रहा था। उसे जगाते हुए श्रीकृष्ण ने कहा- अर्जुन! तुम सो रहे हो? अर्जुन ने कहा- हाँ प्रभो! नींद आ गयी थी। श्रीकृष्ण ने कहा- क्या तुमने भीष्म-प्रतिज्ञा नहीं सुनी? अर्जुन ने कहा- सुनी तो थी! श्रीकृष्ण ने कहा- क्या तुम्हें अपने प्राणों की चिन्ता नहीं है? अर्जुन बोला- प्रभो! मेरे प्राणों की चिन्ता जिसे है वह तो जग ही रहे हैं, स्वयं आप। मैं भला अपनी नींद क्यों खराब करूँ? मेरे करने-धरने से कुछ होनेवाला भी तो नहीं है। कर्ता- धर्ता तो आप हैं। होगा वही जो आप चाहेंगे।

दूसरे दिन घमासान युद्ध हुआ। भीष्म लगे कहर बरसाने; किन्तु शाम होते-होते शर-शय्या पर लेट गये। अतः जो भगवान् के वरदहस्त के नीचे हैं, उनका कभी कोई अनिष्ट हो ही नहीं सकता।

इसलिये आप सभी अपने आदिशास्त्र श्रीमद्भगवद्गीता की यथावत् व्याख्या 'यथार्थ गीता' केवल तीन-चार बार पढ लें तो सारा रहस्य जान जायेंगे कि भजन किसका करें? भजन कैसे करें? हम आप पवित्र हैं कि

अपवित्र ? भजन करने का अधिकार किसे है ? पुनर्जन्म क्या है ?- सारे प्रश्न हल हो जायेंगे और भविष्य में कोई सन्देह नहीं होगा।

ईश्वर एक है। उसकी प्राप्ति की विधि एक है और उस विधि का आचरण ही धर्माचरण है जिससे उस शाश्वत धाम की प्राप्ति होती है-

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। (गीता, 15/6)

जिस परमपद को न सूर्य, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर पाते हैं, जिस परमपद को प्राप्त कर मनुष्य पीछे संसार में नहीं आते हैं, वही मेरा परमधाम है अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इस पद की प्राप्ति में सबका समान अधिकार है।

।। ओम् ।।

आवहि जाँहि अनेक मरि मरि जनमते।
बिनु बूझे सभु बादि जोनि भरमते।।
खात पीत खेलत हसत, भरमे जनम अनेक।
भव जल ते काढहु प्रभु, नानक तेरी टेक।।

('अमृत कीर्तन' से)

हृदय

दिनांक 5 जून, सन् 2009 को श्री परमहंस आश्रम शक्तेषगढ़ की सायंकालीन सभा में भक्तों की जिज्ञासा पर कि "शरीर का वह कौन-सा अंग है जिसे हृदय कहते हैं, जिस हृदय में भगवान् का निवास होता है?"
-पूज्य महाराजश्री का प्रवचन।

भगवान् वास्तव में हृदय में ही होते हैं। लोग पता नहीं कहाँ-कहाँ ढूँढ़ते हैं, लेकिन जब कभी किसी ने पाया तो हृदय-देश में। सीताजी तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं से अनुनय-विनय, प्रार्थना कर रही थीं कि स्वयंवर में हम राम का वरण करें; किन्तु कोई लाभ नहीं। अन्त में सब ओर से निराश होकर हृदयस्थ ईश्वर की जिस पल शरण गयीं, उसी क्षण उन्हें सफलता मिल गयी।

सीताजी का स्वयंवर चल रहा था। जब उन्होंने यज्ञभूमि में पदार्पण किया, महान् पराक्रमी राजा-महाराजा धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रयास कर रहे थे। रावण और बाणासुर भी अपनी शक्ति का प्रयोग कर किनारे हो गये। राजाओं ने परामर्श किया, दस-दस हजार राजा एक साथ धनुष उठाने लगे। पहले धनुष तो रास्ते से हटे! परस्पर युद्ध कर विजयी नरेश सीता को प्राप्त कर ले! फिर भी धनुष टस से मस नहीं हुआ।

तब रामहि बिलोकि बैदेही।
सभय हृदय बिनवति जेहि तेही।। (मानस, 1/256/4)

सीताजी ने राम की ओर दृष्टिपात् किया- फूल की पंखुरी के समान कोमल! जिस धनुष को उठाने के प्रयास में विशाल भुजदण्ड वाले नरेश

गिर पड़ते रहे हों, उसे यह कोमल शरीर वाले कैसे उठा पायेंगे? राम को देखकर वह कातर हृदय से **'बिनवति जेहि तेही'**- हे चौरा माँ, हे डीह बाबा, हे पिशाचमोचन, हे संकटमोचन- झटके में जो भी याद आ गया, उन सबको मना डाला। फिर भी सफलता के लक्षण नहीं दिखे।

मनहीं मन मनाव अकुलानी।
होहु प्रसन्न महेस भवानी।।
करहु सफल आपनि सेवकाई।
करि हितु हरहु चाप गरुआई।। (मानस, 1/256/6)

हे शंकर-पार्वती जी! आज तक मैंने आपकी सेवा की है। उसके बदले में जब मेरा हित सधता दिखायी पड़े, रामजी की अंगुलियाँ धनुष का स्पर्श करती दिखायी पड़ें, उस समय धनुष को हलका कर दें। पहले ही हलका कर देंगे तब तो कोई सामान्य भी धनुष को तोड़ देगा। जब मेरा हित सधता दिखायी पड़े, तभी चाप को हलका करें। सफलता नहीं मिली, तब गणेश जी की ओर उन्मुख हुईं-

गननायक बरदायक देवा।
आजु लगे कीन्हिउँ तुअ सेवा।।
बार बार बिनती सुनि मोरी।
करहु चाप गुरुता अति थोरी।। (मानस, 1/256/7-8)

सीता जी बोलीं- हे गणेश जी! आप तो वर देने में प्रवीण हैं। मेरी विनती है कि चाप की गरुता को स्वल्प कर दें। फिर भी सफलता नहीं दिखायी पड़ी, तब-

देखि देखि रघुबीर तन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल, पुलकावली सरीर।।
(मानस, 1/257)

तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं का सामूहिक विनय किया, कोई लाभ

नहीं हुआ। तब माता सीता उन प्रभु की शरण गईं जिनकी शरण सबको जाना चाहिए-

तन मन बचन मोर पनु साचा।
रघुपति पद सरोज चितु राचा।।

तौ भगवानु सकल उर बासी।
करिहि मोहि रघुबर कै दासी।। (मानस, 1/250/5)

यदि तन, मन और वचन से मेरा प्रण सत्य है, राम के चरणों में मेरा मन अनुरक्त है तो भगवान् (कौन-से भगवान् ? '**सकल उर बासी!**') जो सबके हृदय में निवास करते हैं, मुझे रघुवीर की दासी बना दें! '**कृपा निधान राम सबु जाना**'- भगवान् ने जान लिया कि अब मुझे पुकार रही है, मेरी शरण आ गयी है-

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा।
भरे भुवन धुनि घोर कठोरा।। (मानस, 1/260/8)

जिस क्षण सीता हृदयस्थ ईश्वर की शरण गईं, धनुष टूट गया। जयमाला पड़ गयी। सफलता मिल गयी। अस्तु, भजन एक परमात्मा का ही करना चाहिए। सफलता जब भी मिलेगी, वहीं से मिलेगी। इतने देवी-देवताओं को मनाने का तात्पर्य क्या था ? वस्तुतः गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में भारतीयों का मस्तिष्क इसी में उलझा हुआ था। उन्होंने इस कथानक के माध्यम से देवी-देवताओं की वास्तविकता बता दी थी। सफलता मिली तो भगवान्- 'सकल उर बासी' से! श्रीमद्भगवद्गीता का भी यही सन्देश है- **'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।' (18/61)**- ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में वास करता है।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।
(गीता, 18/62)

अर्जुन! उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाओ, सम्पूर्ण भावों से जाओ। कुछ भाव पिशाचमोचन, कुछ संकटमोचन, कुछ चौरा देवी, दुर्गा देवी- तब तो हम भटक गये, इसीलिए सम्पूर्ण भाव से एक परमात्मा की शरण में जायँ। उसकी कृपा-प्रसाद से आप परमशान्ति को प्राप्त कर लेंगे। **'स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्'**- उस घर को पा जायेंगे जो शाश्वत है, अजर-अमर है। आप रहेंगे और आपका निवास, सदा रहनेवाली शान्ति, सदा रहनेवाली समृद्धि आपका वरण करेगी। इस प्रकार आपके शास्त्रों में भगवान् की पूजा का विधान केवल हृदय में है।

रामचरितमानस के मंगलाचरण में है-

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।2।।

गोस्वामी जी कहते हैं- मैं भवानी और शंकर की वन्दना करता हूँ। शंकर आदि सद्गुरु हैं। उन सद्गुरु की- जो शंकाओं से अतीत हैं, कल्याण तत्त्व में स्थित हैं, मैं वन्दना करता हूँ। जिनके बिना सिद्धजन भी हृदय में स्थित ईश्वर को नहीं पहचान पाते। जनसामान्य की कौन कहे, सिद्धस्तर को प्राप्त लोग भी उनकी कृपा के बिना हृदयस्थ ईश्वर को पहचान नहीं पाते। तुलसीदास जी की रामचरितमानस के अनुसार ईश्वर हृदय में रहता है। गीता के अनुसार ईश्वर हृदय में रहता है। वेदोक्त-उपनिषदोक्त ईश्वर हृदय में है-

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
(कठोपनिषद्, 2/3/17)

अतः प्रार्थनास्थली हृदय और भजन एक परमात्मा का शास्त्रीय निर्देश है। यह जितने मन्दिर हैं, परमात्मा की पाठशाला हैं, नामघर हैं, पूजाघर हैं, प्रार्थना-स्थलियाँ हैं। भगवान् की मूर्ति तो एक में भी नहीं है; क्योंकि-

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।। (मानस, 1/117/5)

भगवान् अमूर्त हैं, अरूप हैं तो उनकी मूर्ति आयी कहाँ से? आपके पूर्वजों में से जिस किसी ने भगवत्ता को प्राप्त कर लिया, उन महापुरुषों की प्रतिमा इन मन्दिरों में सँजोयी गयी है। यह सामूहिक प्रार्थना-स्थलियाँ भगवान् के समीप पहुँचाने का माध्यम हैं। रामलीला, रासलीला, कथा-वार्ता, नाम-जप, तीर्थ-व्रत, पर्व-उत्सव सभी धर्म के आरम्भिक सोपान हैं; किन्तु प्रशस्त पथ पर आते ही भगवान् का भजन, भगवान् का ध्यान हृदय में ही किया जाता है।

विदेश से एक प्रश्न आया है कि यदि हृदय में भगवान् रहते हैं तो शरीर के किस भाग का नाम हृदय है? भगवान् मस्तिष्क में रहते हैं या सीने में या जो धक-धक करता है, उसमें रहते हैं? हृदय क्या है?

जीव विज्ञान की मान्यताओं से भी उच्चतर शोध हमारे आर्षग्रन्थों में है। जिनके अनुसार हृदय कोई ऐसा यन्त्र है जिसमें मात्र भगवान् ही नहीं अपितु सृष्टि का सम्पूर्ण कार्य उससे संचाालित होता है-

ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी।
सत चेतन घन आनन्द रासी।। (मानस, 1/22/6)

वह ब्रह्म कण-कण में व्याप्त है, एक है। वृहद् है इसलिए ब्रह्म, अविनाशी है- जिसका कभी विनाश नहीं होता। वही सत्य है, चेतन है, असीम आनन्द की राशि है। भला वह प्रभु रहता कहाँ है? **'अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी।' (मानस, 1/22/7)**- ऐसा परमात्मा सबके हृदय में निवास करता है अर्थात् ईश्वर का निवास हृदय है।

रावण की भर्त्सना करते हुए गोस्वामी जी लिखते हैं-

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम।।
(मानस, 6/16 ख)

मूर्ख के हृदय में ज्ञान का उदय नहीं होता। एक अन्य प्रसंग लें! भगवान् पंचवटी में थे। सीताहरण हो चुका था। राम और लक्ष्मण उनकी शोध में थे। भोलेनाथ शिव उधर से निकले।

हृदयँ बिचारत जात हर, केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गएँ जान सबु कोइ।।
(मानस, 1/48 क)

शंकर जी हृदय में विचार करते चले जा रहे हैं। अर्थात् हृदय ऐसी स्थली है जिसमें विचार-मंथन चलता रहता है। गुरु-वन्दना प्रकरण में है-

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती।। (मानस, 1/5/5)

गुरु महाराज के चरण-नख की ज्योति मणि-माणिक्य के तुल्य है। इन चरण-नखों का स्मरण करने से हृदय में दिव्य-दृष्टि का संचार हो जाता है। भगवान् शिव की मान्यता देखें-

जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती।
प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती।। (मानस, 1/184/3)

जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति होती है, प्रभु उसके लिए उसी रीति से प्रकट होते हैं। अर्थात् हृदय में भक्ति और प्रीति का भी निवास होता है।

गुरु वशिष्ठ जी ने राम से कहा-

सब के उर अंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो कहिअ उपाउ।।
(मानस, 2/257)

आप सबके हृदय में निवास करते हैं। किसके हृदय में कैसा भाव है, आपको विदित है। अर्थात् हृदय ऐसा स्थल है जहाँ भाव-कुभाव भी रहता है।

महर्षि वाल्मीकि ने भगवान् का निवास-स्थल 'मानस' में इस प्रकार बताया-

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे।
तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे।। (मानस, 2/127/4-5)

जिनके कान समुद्र की भाँति आपकी मनोरम कथारूपी नदियों से निरन्तर भरते हुए भी कभी तृप्त नहीं होते, उनका हृदय आपके लिए सुन्दर घर है।

विभीषण जी जब शरण में आये, भगवान् ने कहा-

कहु लंकेस सहित परिवारा।
कुसल कुठाहर बास तुम्हारा।। (मानस, 5/45/4)

हे लंकेश! परिवार सहित अपनी कुशल तो कहो! आपका निवास बुरी जगह है।

खल मण्डली बसहु दिनु राती।
सखा धरम निबहइ केहि भाँति।। (मानस, 5/45/5)

दिन-रात आप दुष्टों की मण्डली में रहते हैं, धर्म का निर्वाह कैसे होता है? विभीषण ने कहा-

तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजन न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम।।
(मानस, 5/46)

प्रभो! जीवमात्र के लिए सृष्टि में कहीं कुशल है ही नहीं, जब तक वह शोकधाम काम का त्याग करके आपका भजन नहीं करता। जब तक वह भजन नहीं करता, तब तक हृदय में क्या होता है?-

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना।
लोभ मोह मच्छर मद माना।। (मानस, 5/46/1)

ममता तरुन तमी अँधिआरी।

राग द्वेष उलूक सुखकारी।।

तब लगि बसति जीव मन माहीं।

जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं।। (मानस, 5/46/3-4)

इस प्रकार हृदय में भगवान् ही नहीं रहते, खल भी वहीं निवास करते हैं। अतः विचारणीय है कि हृदय क्या है?

उत्तरकाण्ड के ज्ञानदीप प्रकरण में है-

जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी।

ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी।। (मानस, 7/116/7)

जीव के हृदय में तम विशेष है। अँधेरे में अविद्या की ग्रन्थि दिखायी नहीं देती तो भला छूटेगी कैसे?

नन्दिग्राम में भरत जी की रहनी देखें-

नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदयँ समाति।।

(मानस, 2/325)

भगवान् के प्रति उनका इतना अगाध प्रेम था कि हृदय छोटा पड़ गया। सुतीक्ष्ण प्रसंग में है-

अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा।

प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा।। (मानस, 3/9/14)

मुनि का अतिशय प्रेम देखकर भगवान् उनके हृदय में प्रकट हो गये।

विभीषण की शरणागति पर, सुग्रीव के परामर्श पर उन्हें सान्त्वना देते हुए भगवान् ने कहा- **'जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई।।' (मानस, 5/43/4)** यदि रावण का भाई दुष्ट-हृदय होता तो क्या मेरे समक्ष आ पाता? अर्थात् हृदय में दुष्टता भी होती है।

सुन्दरकाण्ड के आरम्भ में ही है-

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।। (मानस, 5/1/1)

वे उपदेश हनुमान जी को बहुत प्यारे लगे। अर्थात् हृदय उपदेशों को भी ग्रहण करता है। लंका की संरक्षिका लंकिनी ने हनुमान को परामर्श दिया–

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा।। (मानस, 5/4/1)

हृदय में कोशलपुर नरेश का स्वरूप धारण कर लंका में प्रवेश कर सब कार्य करें! हनुमान ने लंका में सीता का दर्शन किया–

कृस तनु सीस जटा एक बेनी।
जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी।। (मानस, 5/7/8)

हनुमान ने उन्हें सान्त्वना दिया–

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता।
सुमिरु राम सेवक सुखदाता।। (मानस, 5/14/9)

सृष्टि के समस्त क्रिया-कलाप हृदय कर रहा है। यहाँ धैर्य भी धारण कर रहा है।

किष्किन्धाकाण्ड का वर्णन है–

बहु छल बल सुग्रीव कर, हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब, हृदयँ माझ सर तानि।।
(मानस, 4/8)

हृदय से हार मान लेना, हृदय में बाण मारना जैसे प्रयोग भी रामचरितमानस में द्रष्टव्य हैं। संत-हृदय की तुलना निर्मल जल से की गयी है–

संत हृदय जस निर्मल बारी।
बाँधे घाट मनोहर चारी।। (मानस, 3/38/7)

सरिता सर निर्मल जल सोहा।
संत हृदय जस गत मद मोहा।। (मानस, 4/15/4)

सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।। (मानस, 7/124/7)

श्रमणी शबरी को उपदेश के क्रम में भगवान् ने कहा-

नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हियँ हरष न दीना।। (मानस, 3/35/5)

भक्ति का नवम सोपान है सर्वतोभावेन समर्पण! हृदय में मात्र मेरा भरोसा हो।

मानसरोवर का रूपक बताते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।
वेद पुरान उदधि घन साधू।।

बरषहिं राम सुजस बर बारी।
मधुर मनोहर मंगलकारी।। (मानस, 1/35/3-4)

सुन्दर बुद्धि भूमि है। उस बुद्धि के अन्तराल में हृदय ही गहरा स्थान है। वेद-पुराण समुद्र हैं और उसी से जल लेकर मेघमाला की तरह संत भगवान् के मधुर, मनोहर और मंगलकारी सुयशरूपी जल की वर्षा करते हैं।

सारांशतः भगवान् हृदय में, रावण की मूर्खता हृदय में, उपदेशों की धारा हृदय में, बाण से आहत हृदय, सृष्टि के सारे कृत्य हृदय से ही संचालित होते हैं।

वास्तव में हृदय यौगिक शब्दकोश का शब्द है जो वैदिक, गीतोक्त धर्मशास्त्रीय शब्द है। साधना-प्रक्रिया के अन्तर्गत महापुरुषों ने जिस हृदय में भगवान् का निवास बताया, उसे हृदयंगम करने के लिए तीन शरीरों के तीन हृदयों पर ध्यान अपेक्षित है।

शरीर तीन हैं- स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर। सन्त कबीर ने भी शरीरों की ओर इंगित किया-

कबिरा कबिरा क्या करै, सोधो सकल शरीर।
आशा तृष्णा बस करै, सोइ दास कबीर।।

कबीर सिद्ध हैं, महापुरुष हैं, कबीर अच्छे महात्मा हैं।- इस प्रकार क्या कबीर-कबीर की रट लगाये पड़े हो। **'सोधो सकल शरीर'**- सकल अर्थात् सभी, शरीर कई होते हैं, उनकी शोध करो। पहला है स्थूल शरीर जो पंचभौतिक पिण्ड है, जिसे हम-आप देखते हैं, स्पर्श कर सकते हैं। इसे संचालित करनेवाला सूक्ष्म शरीर है जो मन का संसार है। मन का निरोध होते ही दृष्टिगोचर होने लगता है। कारण शरीर- आत्मा की वह प्रशक्ति जो संसार (वृत्ति) को धारण कर स्थित है, सबका कारण है चेतन प्रकृति जीवात्मा कहलाती है। अपना परिचय देकर ईश्वरीय विभूतियों से विभूषित कर यह शरीर भी शान्त हो जाता है और उसके अन्तराल में जो शेष है, वही परमात्मा है। हृदय की इस गहराई में परमात्मा का निवास है। उसके दर्शन और स्पर्श के साथ ही प्रकृति सदा के लिए विलीन हो जाती है, पुरुष अपना सहज स्वरूप प्राप्त कर लेता है। **''कहत कबीर सुनो भाई साधो, नहिं तहँ द्वैत बखेड़ा।''**- वहाँ द्वैत का द्वन्द्व नहीं है। कबीर कहते हैं कि तीनों शरीरों की शोध करनी होगी; किन्तु आशा और तृष्णा के रहते यह शोध पूर्ण होती ही नहीं। इसीलिए **'आशा तृष्णा बस करै, सोइ दास कबीर।'**- आशा और तृष्णा का निरोधकर जो भी इन तीनों शरीरों की शोध कर ले, वही दास है, वही कबीर है। इतना हमने किया, इतना तुम कर लो तो तुम भी कबीर हो जाओगे। यह स्थिति सबके लिए सुलभ है, यह अभ्यासजन्य है।

इसी का चित्रण महर्षि पतंजलि ने 'योगदर्शन' में किया है-

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्।। (4/7)

ध्यान के पश्चात् जो प्राप्तिवाला योगी है, उसका लक्षण बताते हुए महर्षि कहते हैं कि योगी के कर्म अशुक्ल और अकृष्ण होते हैं अर्थात् योगी के कर्म के न शुभ परिणाम निकलते हैं और न अशुभ संस्कार ही बनते हैं। अन्य सबके कर्म तीन प्रकार के होते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण 'गीता' में कहते हैं-

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।। (3/17)

अर्जुन! जो आत्मतृप्त है, आत्मस्थित है, जिसका योग पूर्ण है, उस पुरुष को कर्म करने से न कोई लाभ है, न कर्म छोड़ देने से कोई क्षति; क्योंकि अब उसे कोई प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नहीं तो पुकारेगा किसे और किसलिए? न ही उसके पीछे कोई विकार है तो काटेगा किसे? किन्तु महर्षि पतंजलि के अनुसार अन्य लोगों के कर्म तीन प्रकार के होते हैं- कृष्ण, शुक्ल और मिश्रित; जो शुभ, अशुभ और शुभाशुभमिश्रित परिणाम देते हैं और जन्म-जन्मान्तरों तक कर्ता का पीछा करते रहते हैं-

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं
स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्।। (योगदर्शन, 4/9)

जाति अर्थात् जन्म, देश अर्थात् किसी भी स्थान, कूकर-शूकर, पेड़-पौधा- कोई भी योनि और काल अर्थात् समय- इन तीनों का व्यवधान रहने पर भी कर्म संस्कार के प्रकट होने में व्यवधान नहीं पड़ता; क्योंकि स्मृति और संस्कार दोनों का एक ही स्वरूप है। स्मृति में वही उभरता है जो संस्कारों में संचित है। संस्कारों की गति अबाध है। ये जन्म-जन्मान्तरों में यत्र-तत्र सर्वत्र कर्ता का अनुगमन करते हैं।

कागभुशुण्डि जी को शंकरजी का आशीर्वाद था कि हजार जन्मों के पश्चात् रामभक्ति मिलेगी। अनेक जन्म मिले, अनेक देशों में गये, कालचक्र से गुजरे किन्तु कोई व्यवधान नहीं पड़ा। अन्ततः उन्हें अविरल रामभक्ति प्राप्त हुई-

कवनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना।
सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना।। (मानस, 7/108/8)

किन्तु किसी की स्मृति शुद्ध हो गयी हो तो?-

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का।
(योगदर्शन, 1/43)

स्मृति उस समय पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाती है जब चित्त का निज स्वरूप शून्य हो जाता है। ध्येय लक्ष्यमात्र का आभास रह जाता है। यह निर्वितर्क समाधि की अवस्था है, बीज विद्यमान है। जब वितर्क अर्थात् कुछ संस्कार शेष ही नहीं है तो अब स्मृति-पटल पर उभरेगा क्या?

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः। (योगदर्शन, 1/47)

जब निर्वितर्क या निर्विचार समाधि अत्यन्त निर्मल हो जाती है, तब योगी में **'अध्यात्म प्रसादः'**- आत्मिक विभूतियाँ भली प्रकार प्रसारित हो जाती हैं। सनातन पुरुष अजन्मा, शाश्वत जिन विभूतियों वाला है, वह सारी विभूतियाँ योगी को प्राप्त हो जाती हैं, आत्मा का आधिपत्य स्थापित हो जाता है। आत्मिक विभूतियों का सारा प्रसाद उसे प्राप्त हो जाता है। अब कोई विभूति उससे अलग नहीं है।

उस समय बुद्धि ऋतम्भरा होती है, ऋतुमती होती है। जैसे खेत बुआई के लिए पूर्णतः तैयार है। बीज डालो जम जायेगा। ऋतम्भरा अवस्था उस ज्योतिर्मय परमात्मा को धारण करने की क्षमतावाली है, बुद्धि परमात्म-स्वरूप हो जाती है। इस ऋतम्भरा प्रज्ञा के भी अत्यन्त निर्मल होने पर-

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः।
(योगदर्शन, 1/51)

वह ईश्वर मिलकर अपना सारा प्रसाद दे देता है। जब तक यह लेन-देन लगा है, तब तक कारण शरीर कार्य कर रहा है। जब वह ईश्वर भली प्रकार मिल गया, सारा संस्कार भी शान्त कर देता है। यहाँ कारण

शरीर भी शान्त हो गया। इस प्रकार संस्कारों के बीज का भी सर्वथा अभाव हो जाने पर इस अवस्था का नाम निर्बीज समाधि है। इसी को कैवल्य पद कहते हैं, कैवल्य ज्ञान कहते हैं। कैवल्य समाधि भी इसी का नाम है।

सारांशतः पहले स्थूल शरीर पंच महाभूतों से निर्मित यह पिण्ड है। जिसका हृदय यह दिल है जो धक-धक करता है। यह दिल जब कार्य करना बन्द करता है तो मौत होती है। यह शरीर मरता-जीता रहता है। **'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय'**- पुरुष पुराना वस्त्र त्यागकर जिस प्रकार नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, ऐसे ही भूतादिकों का स्वामी जिस शरीररूप वस्त्र को त्यागता है, नवीन शरीररूप वस्त्र धारण कर लेता है, फिर उस नये वस्त्र में वह ज्यों-का-त्यों है। जो व्यवस्था वहाँ पर मिली थी, वह सब यहाँ पर विद्यमान हैं। उसने कुछ खोया ही नहीं। यह वस्त्र-परिवर्तन का अनन्त सिलसिला चला आ रहा है।

गीता में भगवान् ने कहा- अर्जुन! शरीर नाशवान् है इसलिए तू युद्ध कर। तो क्या पाण्डव पक्ष के शरीर अविनाशी थे? इस आदेश से यह तो स्पष्ट होता नहीं कि वह केवल कौरवों को मारे। आधे रिश्तेदार पाण्डव पक्ष में भी खड़े थे। जहाँ भी शरीर दिखायी पड़े, चलाओ बाण! क्योंकि शरीर तो है ही नाशवान्।

यह भी तो प्रश्न अपनी जगह है कि शरीर मारने से क्या मर जायेगा? इधर शरीर छूटा, उधर दूसरा शरीर तैयार! एक वस्त्र बदला, दूसरा वस्त्र तैयार! जब तक अन्तिम संस्कार का अन्त नहीं हो जाता, तब तक शरीरों का क्रम अनवरत बना रहता है। अन्तिम संस्कार का मिटना, पुनः शरीर-निर्माण के कारण का मिट जाना- एक साथ घटित होता है। यही है शरीर का अन्त अर्थात् मन का निरोध और मन का अचल स्थिर ठहर जाना और शरीरों के पुनर्निर्माण के कारणों का समाप्त हो जाना एक साथ घटित होता है।

इसके साथ ही वह प्रभु आप में दृष्टि बनकर संचारित हो जायेंगे, सामने तो स्वयं हैं ही। आप नहीं समझेंगे तब भी स्वतः समझ में आ जायेगा।

इस प्रकार शरीर एक स्थूल वस्त्र है। इसके अन्दर एक सूक्ष्म शरीर है जिससे बार-बार शरीर मिलता है- वह है मन का संसार। इन्द्रिय और मन के संयम के पश्चात् सूक्ष्म शरीर का भी संयम हो जाता है। तब कारण शरीर दृष्टिगोचर होता है। सबका कारण परमात्मा की वह प्रशक्ति जो सृष्टि का संचालन करती है। अब वह आत्मा अपना प्रसाद प्रसारित करने लगती है, विभूतियों से अवगत कराने लगती है। देना-लेना लगा है तब तक तो वह साधक है। वह अवगत करा चुकी तहाँ बुद्धि ऋत् से भर गयी, परमात्मा को धारण करने की क्षमता आ गयी। इसके भी शान्त होने पर कैवल्य ज्ञान, परमतत्त्व परमात्मा! इस गहराई में भगवान् का निवास है। इसी हृदय में भगवान् रहते हैं।

अर्थात् तीन शरीर हृदय में हैं। यह यौगिक है; योग के परिवेश में ये तीनों शरीर हैं- स्थूल शरीर मरता-जीता रहता है, इसमें भगवान् नहीं रहते। इसका यह आशय नहीं है कि वह स्थान भगवान् से रिक्त है। जिस प्रकार दूध में मक्खन या काष्ठ में अग्नि रहते हुए भी उपयोग के लिए प्रत्यक्ष नहीं है, उसी प्रकार इस स्थूल हृदय में रहते हुए भी भगवान् साक्षी मात्र हैं। यद्यपि साधना इसी के द्वारा सम्पन्न होती है- **'तन बिनु बेद भजन नहिं बरना।' (मानस, 7/95/5)**- यही शरीर है।

दूसरा है सूक्ष्म शरीर! एक भी संस्कार है, तब तक सूक्ष्म शरीर विद्यमान है- **'जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं।' (मानस, 4/9 छन्द-2)**- पवन अर्थात् श्वास-प्रश्वास की गति का संयम कर, श्वास में भले उद्वेग उठें तो वायुमंडल शुद्ध है, बुरे संकल्प उठें तो वायुमंडल गन्दा है; शुभ और अशुभ श्वास की दो ही धाराएँ चलती हैं।- इस श्वास की गति रोककर अर्थात् मन में भले-बुरे संकल्प न

उठें और न बाह्य संकल्प भीतर प्रवेश कर पायें- इस प्रकार प्राणों को जीतकर मन और इन्द्रियों को निर्मल कर सतत् अभ्यास के फलस्वरूप मुनिजन भगवान् को ध्यान में पा जाते हैं- मन का निरोध करके, तन को निर्मल करके केवल एक शरीर से पार हुए।

मन और बुद्धि के निरोध के साथ ही सूक्ष्म शरीर समूल शान्त हो जाता है। चेतन आत्मा अपना परिचय देने लगती है। यह कारण शरीर भी परिचय देकर शान्त हो जाता है। वहाँ जो शेष बचता है वह है परमात्मा!

वैदिक वाङ्मय और औपनिषदिक साहित्य में 'अङ्गुष्ठमात्र पुरुष' का वर्णन है, जिसका आशय प्रचलित है कि अंगूठे के आकार और परिमाण अर्थात् मात्रा में भगवान् सबके हृदय में निवास करते हैं। कहा जा सकता है कि हाथी के हृदय में उसके अंगूठे के बराबर, चींटी में उसके अंगूठे के आकार का; किन्तु सर्प में? उसे तो अंगूठा होता ही नहीं! असंख्य जीवाणुओं में अंगूठे के बराबर परमात्मा क्या नहीं होते जबकि वह सर्वत्र हैं- अणु-परमाणु से भी छोटे! बड़े से बड़े! वस्तुतः इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार- ये जब सिमट जायँ, योग के अंग-उपांग, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि- सिमटकर वृत्ति शान्त प्रवाहित हो जाय, श्वास आयी तो 'ॐ', गयी तो 'ॐ', बीच में अन्य संकल्पों का स्फुरण न हो। जिस समय यह संयम सधा, योग के अंग जब संगठित हुए, एक धारा में वृत्ति हुई, वहीं पर भगवान् हैं। यही अङ्गुष्ठ प्रमाण है। अङ्गुष्ठ प्रमाण का आशय है योग के अंग-प्रत्यंगों का सध जाना, गठित हो जाना।

वस्तुतः तीन शरीरों का विश्लेषण महापुरुषों की सूक्ष्म शोध है। जिन्होंने भगवान् को पाया इस गहराई में पाया। इन्द्रियों के संयम के साथ ही स्थूल शरीर सध जाता है और साधक सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर जाता है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, तेजस और प्राज्ञ- इन सोलह तत्वों का सूक्ष्म शरीर है जो मन का संसार है। मन

के निरोध के साथ ही सूक्ष्म शरीर भली प्रकार सध जाता है। संसार (माया) मन पर अंकित है। जिस धरातल पर माया काम करती है वह है मन! जब माया के ठहरने की जगह ही नहीं बची, **'मन मिटा माया मिटी, हंसा बेपरवाह।'**- इस मन के निरोध के साथ ही सूक्ष्म शरीर भी सध जाता है, तहाँ कारण शरीर जो इन सबका कारण है साधक के समक्ष आता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं- आठ भेदों वाली जड़ प्रकृति है, जीवात्मा मेरी चेतन प्रकृति है जो सबको धारण करके स्थित है। यही कारण है। सूक्ष्म शरीर के निरोध के साथ ही अर्थात् मन के निरोध के साथ ही वह कारण शरीर; परमात्मा की वह प्रशक्ति जो सबको धारण कर स्थित है भली प्रकार परमात्मा का बोध करा देता है। प्रकृति से सम्बन्ध छोड़ चुका है आत्मिक विभूतियों का बोध करा देता है- कैसे कण-कण में व्याप्त है, कैसे ज्योतिर्मय है, कैसे काल से अतीत है? जब तक यह कार्य चलता है, वह कारण है और अन्तिम समाधान के साथ कारण शरीर भी शान्त हो जाता है। वहाँ जो शेष बचता है, वह केवल परमात्मा है।

यह साधनगम्य है। आप साधना में प्रवृत्त हो जायँ, एक-एक सोपान स्वतः पार होते चले जायेगे। हमें करना कुछ भी नहीं है। जब तक भजन जागृत नहीं होता, तब तक हम प्रत्याशी हैं लेकिन किसी तत्त्वदर्शी सद्गुरु के सान्निध्य में गीतोक्त साधना पकड़ लेने पर, थोड़ा स्तर उठ जाने पर वह चेतन परमात्मा आपके मन, अन्तःकरण में जागृत होकर मार्गदर्शन करने लगता है फिर उनके निर्देशन में चलना ही भजन है, योग-साधना है; और निर्देशन में चलते हुए उस परम का स्पर्श करते ही वह बताने वाला भी शान्त हो जाता है, केवल सहज स्वरूप रह जाता है। बुद्धि के अन्तराल में जो यह अगाधता है उसका नाम हृदय है; किन्तु यह जागृति किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष द्वारा ही संभव है। इसकी सम्पूर्ण विधि 'गीता' है। 'गीता' संस्कृत में है जो आज जनसामान्य की भाषा नहीं रही। अतः इसे

विधिवत् समझने के लिए इसकी व्याख्या 'यथार्थ गीता' का अनुशीलन करें। यही मानव का आदि धर्मशास्त्र है। इसी का विस्तृत वर्णन वेद इत्यादि समस्त शास्त्र हैं। विविध भाषा-शैलियों में सृष्टि के समस्त महापुरुषों की वाणियों में भी यही है। 'एक ईश्वर'- जो भी कहते हैं, 'गीता' के ही संदेशवाहक हैं।

।। ॐ ।।

हमारे प्रकाशन
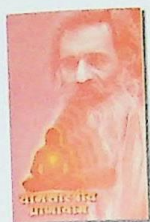
योगशास्त्रीय प्राणायाम -
योगशास्त्रीय प्राणायाम में आपने बताया है कि यम, नियम और आसन के सधते ही श्वास-प्रश्वास का शान्त प्रवाहित होना ही प्राणायाम है। अलग से प्राणायाम नाम की कोई क्रिया नहीं है। यह योग चिन्तन की एक अवस्था है। इसी का समाधान इस पुस्तक में किया गया है।

३ भाषाओं में

बारहमासी -
अपने पूज्य गुरु श्रीपरमानन्द जी महाराज को आकाशवाणी से प्राप्त भजन (ईश्वरीय गायन) बारहमासी का संकलन एवं उसकी व्याख्या की है। इसमें प्रवेशिका से लेकर पराकाष्ठा तक लक्ष्य की ओर बढ़ने का पथप्रदर्शन किया गया है।

हिन्दी भाषा में

योगदर्शन-
प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या -
महर्षि पतञ्जलिकृत इस पुस्तक में बताया गया है कि 'योग' प्रत्यक्ष दर्शन है यह लिखने या कहने में नहीं आता। क्रियात्मक चलकर ही साधक समझ पाता है कि जो कुछ महर्षि ने लिखा है उसका वास्तविक आशय क्या है? साधनोपयोगी पुस्तक है।

४ भाषाओं में
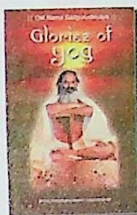
ग्लोरिस आफ योग -
हठ, चक्र, भेदन और योग, प्राणायाम, ध्यान के बारे में पूर्ण परिचय,

अंग्रेजी भाषा में

प्रश्न समाज के-
उत्तर गीता से -
इस पुस्तिका में सामाजिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक कैसे भी प्रश्न हों, उनका गीता के आलोक में समाधान किया गया है।

हिन्दी भाषा में

अहिंसा का स्वरुप -
अहिंसा एक उलझा हुआ प्रश्न है। मूलतः यह यौगिक, आन्तरिक साधना का शब्द है। इस पुस्तक में हम पायेंगे कि हमारे पूर्वज महापुरुषों ने अहिंसा को किस संदर्भ में लिया है।

४ भाषाओं में
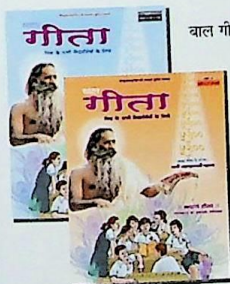
बाल गीता-

यह पुस्तिका बालक के निर्मल मन में एक परमात्मा के प्रति पूर्ण आकर्षण पैदा कर समाज एवं साधना के क्षेत्र में सहज प्रवेश के लिए उपयोगी है। इसमें समर्पण का पाठ्यक्रम अंकित है जिससे बच्चों में धर्म-सन्देश का बीजारोपण, संस्कार पड़ेंगे। वे इस राह पर चलेंगे और अपने ही भगवत्-स्वरूप को प्राप्त कर लेंगे।

४ भाषाओं में

भजन से लाभ (नवयुवकों की जिज्ञासाएँ) -
इस पुस्तिका में नवयुवकों के अनेक प्रश्नों का संक्षेप में समाधान करते हुए भजन की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है। यदि एक परमात्मा में मानसिक स्तर से लगते बन गया तो उन प्र के संरक्षण में साधना चलती रहेगी, वाह्य कार्यों में भी मदद मिले और आवागमन से मुक्ति तो मिलना ही है क्योंकि ईश्वर-पथ में आरम्भ का नाश नहीं होता।

हिन्दी भाषा में

MP3 ऑडियो सिडिज्

११ भाषाओं में
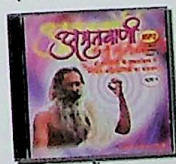
श्री स्वामीजी के मुखारविन्द से निःसृत अमृतवाणियों का संकलन वाल्यूम १ से ६० तक।

हिन्दी भाषा में

'श्रीमद्भगवद्गीता' की साधना

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।। (१३/२२)

वह पुरुष **'उपद्रष्टा'**– हृदय-देश में बहुत ही समीप, हाथ-पाँव-मन जितना आपके समीप है उससे भी अधिक समीप द्रष्टा के रूप में स्थित है। उसके प्रकाश में आप भला करें, बुरा करें, उसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह साक्षी के रूप में खड़ा है। साधना का सही क्रम पकड़ में आने पर पथिक कुछ ऊपर उठा, उसकी ओर बढ़ा तो द्रष्टा पुरुष का क्रम बदल जाता है, वह **'अनुमन्ता'**– अनुमति प्रदान करने लगता है, अनुभव देने लगता है। साधना द्वारा और समीप पहुँचने पर वही पुरुष **'भर्ता'** बनकर भरण-पोषण करने लगता है, जिसमें आपके योगक्षेम की भी व्यवस्था कर देता है। साधना और सूक्ष्म होने पर वही **'भोक्ता'** हो जाता है। **'भोक्तारं यज्ञ तपसाम्'**– यज्ञ, तप जो कुछ भी बन पड़ता है, सबको वह पुरुष ग्रहण करता है। और जब ग्रहण कर लेता है, उसके बाद वाली अवस्था में **'महेश्वरः'**– महान् ईश्वर के रूप में परिणत हो जाता है। वह प्रकृति का स्वामी बन जाता है; किन्तु अभी कहीं प्रकृति जीवित है तभी उसका मालिक है। इससे भी उन्नत अवस्था में वही पुरुष **'परमात्मेति चाप्युक्तो'**– जब परम से संयुक्त हो जाता है, तब परमात्मा कहलाता है। इस प्रकार शरीर में रहते हुए भी यह पुरुष आत्मा **'परः'** ही है, सर्वथा इस प्रकृति से परे ही है। अन्तर इतना ही है कि आरम्भ में यह द्रष्टा के रूप में था, क्रमशः उत्थान होते-होते परम का स्पर्श कर परमात्मा के रूप में परिणत हो जाता है।

– 'श्रीमद्भगवद्गीता' भाष्य 'यथार्थ गीता' से साभार

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट
न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं. ५, मोगरा लेन (रेल्वे सब-वे के पास),
अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०००६९, भारत
दुरध्वनी - ०२२-२८२५५३००
ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com